कवि सुमित्रानंदन पंत

नन्ददुलारे वाजपेयी

आधुनिक काव्य के विवेचन में तीन प्रमुख शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। हिंदी की नवीन कविता को साधारणतः छायावाद कहा गया है, किंतु यह न तो कोई पारिभाषिक शब्द है और न इसकी कोई परंपरागत व्याख्या ही है। वर्तमान समय में छायावादी काव्य की ऐसी अनेक प्रवृत्तियां मिलती हैं जिनका विवेचन अन्य देशों में स्वच्छंदतावाद या रहस्यवाद के अंतर्गत किया गया है। स्वच्छंदतावाद शब्द रोमांटिसिज्म का पर्याय है। इस रूप में इसका प्रथम प्रयोग आचार्य शुक्ल ने किया था। उन्होंने प्रकृत स्वच्छंदतावाद और छायावाद में अंतर बताया है। स्वच्छंदतावादी काव्य को वे नैसर्गिक काव्य मानते हैं, परंतु छायावादी काव्य में उन्हें सांप्रदायिकता का भान होता है। यूरोपीय धार्मिक काव्य में 'फैंटेसमाटा' की भांति छायावादी काव्य में भी वे इसका प्रत्यय पाते हैं। शुक्लजी रहस्यवादी काव्य को भी अधिकतर साधनापरक और सांप्रदायिक बतलाते हैं। परंतु हिंदी के छायावादी काव्य को 'फैंटेसमाटा' की परिधि में ही रख देना न्यायसंगत नहीं है और महादेवी के रहस्यवादी काव्य को सांप्रदायिकता की भूमि पर देखना भी उचित नहीं है। वास्तव में हिंदी का छायावादी काव्य स्वच्छंदतावाद की भूमिका पर ही लिखा गया है और महादेवी की रहस्योन्मुख कविता भी स्वच्छंदतावाद की व्यापक भूमिका पर ही आंकी जा सकती है। इस प्रकार आधुनिक छायावाद और रहस्यवादी काव्य-रचनाएं स्वच्छंदतावाद की ही विभिन्न शैलियां हैं। उन्हें स्वच्छंदतावाद से पृथक देखने का प्रयास समीचीन नहीं कहा जा सकता। यदि हम इन तीनों वादों में अंतर करना ही चाहें तो कह सकते हैं कि स्वच्छंदतावाद नवयुग की समग्र प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला काव्यस्वरूप है, जिसमें परंपरागत काव्यधारा और काव्योपकरणों के विरुद्ध विद्रोही उपकरणों की प्रधानता है। नई भावसृष्टि और नए अलंकरण हैं, बहिर्मुखता के स्थान पर अंतर्मुखी प्रयाण है, प्रकृति का निसर्गजात आकर्षण है, शब्दावली में नवीन संगीत है। छायावादी काव्य में भी ये तत्त्व हैं। परंतु जिस एक तत्त्व की प्रधानता

NANDARAM DHEKIAL PHOOKAN COLLEGE LIBRARY
Acc. No.....
Date.....
NAGAON: ASSAM

के कारण इसका यह नाम पड़ा है, वह इसकी अंतर्निहित आध्यात्मिकता है। समस्त स्वच्छंदतावादी काव्य में इस प्रकार का आध्यात्मिक संस्पर्श हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। परंतु छायावादी काव्य में यह संस्पर्श मूलतः विद्यमान माना जाता है। स्पष्ट है कि इस सीमित परिभाषा में हिंदी का समस्त छायावादी काव्य नहीं आता। परंतु एक बार नाम पड़ जाने पर गुणों के न रहते हुए भी नाम की स्थिति बनी रहती है। वही बात छायावादी काव्य के संबंध में भी घटित हुई है। वर्तमान समय में छायावाद एक रूढ़ शब्द ही कहा जाएगा। जहां तक रहस्यबाद का संबंध है, कबीर और जायसी आदि का रहस्यवादी काव्य किसी साहित्यिक अर्थ में स्वच्छंदतावादी नहीं है, यद्यपि कुछ प्रवृत्तियां समान हो सकती हैं। परंतु वर्तमान समय में हिंदी का समस्त रहस्यवादी काव्य स्वच्छंदतावाद के व्यापक परिवेश में समाहित हो जाता है। स्वभावतः रहस्यवादी काव्य में प्रतीक पद्धति अपनाई जाती है और वास्तविक रूपात्मक सृष्टि का सीधा वर्णन नहीं होता। स्वच्छंदतावादी काव्य में बाह्य और आभ्यंतर प्रकृति का वास्तविक और रूपात्मक वर्णन विधेय है। स्वच्छंदतावादी काव्य इहलौकिक और मानवीय भूमिका का काव्य है जबकि रहस्यवादी काव्य अंतःसत्तात्मक या परोक्ष वस्तु से संबंधित काव्य है।

यूरोप में प्राचीन अथवा क्लासिकल काव्यधारा की प्रतिक्रया में जो नवयुग की काव्यधारा 18वीं सदी के अंत में प्रारंभ हुई उसे रोमांटिसिज्म कहा जाता है। शेक्सपियर (16वीं शती) का काव्य भी इसके अंतर्गत परिगणित हैं। लौंजाइनस को प्रथम रोमांटिक समीक्षक पुकारते हैं। किंतु यह प्रयोग शास्त्रीय नहीं, मात्र कतिपय प्रवृत्तियों को देखकर लोग ऐसा कहते हैं। वस्तुतः रोमांटिक प्रवृत्ति 18वीं शती के अंत से आरंभ होती है। इसे एक प्रकार से आधुनिक युग का काव्य कहा जा सकता है। इसकी तिथि फ्रांस की प्रथम राज्यक्रांति से मानी जाती है। इस तांत्रिक क्रांति ने सामंतयुगीन व्यवस्था को मिटाकर नवयुग का आरंभ किया। इस नई कविता को ज़नतंत्रात्मक कविता भी कहते हैं। मार्क्सवादी समीक्षकों ने इसे ही पूंजीवाद के आरंभ और अभ्युदय-काल का काव्य कहा है।

अनेक समीक्षकों ने बताया है कि नए काव्य में वैयक्तिक स्वातंत्र्य की भावना निवास करती है। इस पूर्ववर्ती काव्य में जातीयता को महत्त्व दिया जाता था। यह काव्य जाति द्वारा सम्मानित नैतिक आधारों को लेकर चलता था तथा सामूहिक भावनाओं का प्रकाशक था। व्यक्तिगत अनुभूतियों के प्रकाशन का उसमें अधिक अवसर न था। उसकी अन्य विशेषता यह है कि उसके विषय

निर्धारित थे। महाकाव्य के लिए कोई प्रख्यात पुरुष नायक होता था, वह राष्ट्रीय और जातीय समस्त गुणों का प्रतीक रूप रहता था। इसे केंद्र बनाकर उससे संबद्ध अन्य पात्र किसी वर्ग विशेष (टाइप) के प्रतिनिधि होते थे। 'रामचरितमानस' में भरत आदर्श भाई हैं और हनुमान सेवाभाव के प्रतिनिधि हैं। व्यवस्थानुरूप समस्त सामाजिक वर्ग महाकाव्य में प्रतिनिधित्व पाते थे। इस प्रकार नियमानुगत शासन लेकर यह काव्य चलता गया। उसमें जातीय आकांक्षाओं की परितृप्ति होती थी। इस युग का गीतिकाव्य भी उक्त अनुशासन से मुक्त नहीं है। सूर और मीरा ने सर्वमान्य आराध्य के प्रति अपनी भावनाएं समर्पित कीं। अनिर्दिष्ट व्यक्ति या वस्तु रचना का विषय नहीं बन सकती थी।

इसके विपरीत स्वच्छंदतावादी काव्यधारा जातीय आदर्शों के प्रति अवमानना या उपेक्षा का माप लेकर आई। एक बहुत बड़ी विभाजक रेखा प्राचीन और नवीन के बीच में बनी। आधुनिक कविता किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं करती, किसी प्राचीन पुरुष की अपेक्षा नहीं करती। यह व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूतियों, लालसाओं और संघर्षों का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें नियमानुशासन के विरुद्ध विद्रोह की वाणी व्यक्त हुई है।

भावपक्ष में इन परिवर्तनों के अतिरिक्त कलापक्ष में भी परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन काव्य-कला की भूमिका पर अनेक नियमों को लेकर चलता था, जैसे, नाटक में संधियां इत्यादि सर्वमान्य थीं। प्रबंधकाव्य में भी संकलनतत्त्व स्वीकृत थे। वहां सुखांत दृश्यों के साथ दुखांत दृश्यों का वर्णन वर्जित था, आंगिक शुचिता का तत्त्व स्वीकृत था तथा सौंदर्य-प्रतिमान निर्धारित थे। कला संबंधी नवीन उद्भावनाओं के लिए उसमें अधिक अवकाश न था। शेक्सपियर के नाटकों में 'क्लासिसिज्म' या शास्त्रीयता के विरुद्ध सुखांत और दुखांत का मिश्रण होने के कारण प्राचीन समीक्षकों ने उनका विरोध भी किया था।

नए काव्य में नए जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा और स्वतंत्र प्रयोग की प्रवृत्ति थी। यह मौलिक स्वतंत्रता का प्रतिफलन है, जिसके मूल में जनतांत्रिक भावनाएं हैं। नवीन काव्य में नए तथ्यों की मान्यता एवं नियमों के निर्धारण के लिए प्रयत्न हुआ। छंदों की भूमिका में भी नए काव्य में अनेक परिवर्तन हुए। पहले स्वीकृत छंद थे, उनके बंधन से पूर्ण स्वातंत्र्य की, अराजकता की कामना व्यक्त की गई। मुक्तछंद भी प्रचलित हुए। संक्षेप में प्राचीन कविता संयमित थी। उसमें अंगसंगति को स्थान था, वह जातीय भावनाओं पर अवलंबित थी और विद्रोह का स्वर

उसमें नहीं था। नई कविता नियमों के विरुद्ध विद्रोह करती है एवं व्यक्तिगत अनुभूतियों के प्रदर्शन की मांग करती है। प्राचीन कविता जातीय दर्शनों की अनुगामिनी थी, नई कविता स्वतंत्र दर्शनों को व्यक्त करने का सामर्थ्य रखती है।

प्राचीन काव्य से नए काव्य का कोई संबंध सूत्र है अथवा संबंधविच्छेद की स्थिति आ गई है—इस प्रश्न के विषय में कहा जाता है कि क्लासिकल कविता भी अपने पूर्ण वैभव के युगों में ऐसे गुणों को प्रतिपादित करती है जिन्हें आधुनिक कवि मान्यता देते हैं। अतिरेक पर जाकर नई कविता विशृंखल हो गई है और निरर्थक शब्दजाल में बदल गई है। भावनाएं उसमें धूमिल हो जाती हैं, कल्पनाएं अस्पष्ट। प्राचीन कविता नियमातिशय से सांचे में ढली हुई और निष्प्राण हो गई थी, कोरी आलंकारिकता तथा बाह्य रूप की ओर चली गई थी। नई कविता अतिवाद की स्थिति में अत्यंत व्यक्तिगत अनुभूतियों के स्तर पर पहुंच जाती है। संक्षेप में, प्राचीन काव्य यदि नियमाधिक्य से ग्रस्त होता गया तो नई कविता नियमशून्य होने का भय उपस्थित करने लगी। अपने उत्कर्ष के युग में दोनों ही काव्य बहुत समीप रहे। दोनों में समान आह्लाद मिलता है। यहां तक कहा जाता है कि विशुद्ध शास्त्रीय अथवा विशुद्ध स्वच्छंदतावादी रचना कोई नहीं। प्राचीन काव्य आभिजात्य, परंपरा, शास्त्र और औदात्य की वस्तु है। नया काव्य अंतःसत्व का अन्वेषक है तथा औदात्य को विशिष्ट ढंग से स्पर्श करता है।

शाखारूप में विभिन्न काव्यशैलियां स्वच्छंदतावादी काव्य में समाहित हो जाती हैं। छायावादी काव्य मूलतः स्वच्छंदतावादी है। नई भूमियों को छूने और नई कलात्मकता के लिए प्रयोग का कार्य जिस काव्य में होता है उसके लिए हिंदी मे 'छायावाद' नाम निश्चित हुआ। प्रत्येक छायावादी काव्य स्वच्छंदतावादी काव्य है, पर प्रत्येक स्वच्छंदतावादी काव्य छायावादी काव्य नहीं।

छायावादी काव्य-शैली स्वच्छंदतावादी काव्य की एक शाखा है। इसकी रूपरेखा में भेद है। आचार्य शुक्ल इसे अभिव्यंजना की एक शैली मात्र कहते हैं। नवयुग की चेतना के संवाहक नए काव्य का प्रारंभ उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उसमें उन्हें शैली की लाक्षणिकता, उक्ति की वैचित्र्यपूर्ण आलंकारिकता ही दिखाई दी। अभिव्यंजना की इस नई शैली को उन्होंने 'छायावाद' नाम दिया। किंतु यहां छायावादी काव्य के केवल रूपविन्यास पक्ष को ही द्योतित किया गया है, उसके समस्त स्वरूप की व्याख्या नहीं है। अव्याप्ति के कारण यह परिभाषा लाक्षणिक शैली और वक्रोक्ति से युक्त घनानंद के काव्य में भी छायावाद का भ्रम उत्पन्न

कर सकती है। वस्तुतः उसे वक्रोक्तिकाव्य कहना ही संगत है। शैली के साथ नए काव्य की भावदृष्टि का भी आकलन न करने के कारण शुक्लजी की परिभाषा को एकांगी और अतिशयोक्तिपूर्ण ही कहना होगा।

प्रसाद के अनुसार, छायावादी काव्य उस मोती के सदृश है जो अपने चारों ओर के आभात्मक वातावरण को व्याप्त किए है। छायावादी काव्य को उन्होंने मोती के सदृश उज्ज्वल (वस्तुपक्ष) तथा कलापक्ष को मोती की आभा के समान चमकदार माना है। उपमा-पद्धति पर होने के कारण यह परिभाषा दोषपूर्ण है। यह तार्किक पद्धति न होकर काव्यात्मक पद्धति है। वक्रता की ओर दृष्टिपात प्रसाद ने भी किया है। अभिव्यंजना के वैशिष्ट्य की ओर ध्यान देते हुए वे भी शुक्लजी के समीप ही पहुंचते हैं। महादेवी के अनुसार, मानव-संबंधों में जब तक माधुर्यसत्ता प्रधान नहीं रहती तब तक आत्मसमर्पण की स्थिति नहीं आती। तब तक जो काव्य-रचना होगी उसमें पर्याप्त सार्थकता न होगी। कवि अपनी संवेदना में जब अधिक वेदना ग्रहण करता है, परस्पर अंतर को मिटा-कर अपने व्यक्तित्व को परम व्यक्तित्व में समर्पित कर देता है तब इस प्रकार की भावना से बनी कविता छायावादी होती है। इस परिभाषा में छायावाद और रहस्यवाद में कोई अंतर प्रदर्शित नहीं है। किंतु इससे नई कविता के वस्तुविधान और अनुभूतिविधान पर प्रकाश पड़ता है।

बहुत-से कवियों और विचारकों ने छायावाद-रहस्यवाद में अंतर नहीं माना है। डा० नगेंद्र ने छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा है। यह परिभाषा छायावाद-रहस्यवाद-स्वच्छंदतावाद—सभी पर लागू होगी, क्योंकि यह नवीन काव्यवस्तु के अंतःपक्ष से संबंध रखती है। वह अंतर्मुखी काव्य से संबंधित है। कुछ लोगों ने छायावादी काव्य को प्राकृतिक सौंदर्यचेतना से संबद्ध मानकर कहा है कि उसमें जो अलंकरण हैं वे प्राकृतिक अलंकरण हैं, पर ऐसा मानने पर अनेक काव्य छायावादी सतह से हट जाते हैं। छायावाद का मुख्य संबंध मानवीय जीवन की अनुभूति से है। इसे केवल प्राकृतिक सौंदर्य का काव्य मानना ठीक नहीं। प्रकृति के व्यापक अर्थ में यह उससे संबंधित काव्य अवश्य है। वास्तव में छायावाद व्यष्टिसौंदर्यबोध की कल्पना है और रहस्यवाद समष्टिसौंदर्यबोध की कल्पना है। मानवजीवन की इकाइयों तथा प्रकृति के भीतर जो अध्यात्मतत्त्व की झलक देखते हैं वे व्यष्टिसौंदर्य के ज्ञापक हैं, वे छायावादी हैं, वे प्रकृति की एक इकाई पर दृष्टि रखते हैं। यही सौंदर्यबोध अधिक उदात्त होकर एक समष्टिसौंदर्यबोध बन जाता है एवं अपने अंदर व्यष्टिसौंदर्यबोध का

विलय कर देता है। ऐसी भावभूमिका रहस्यवादी काव्य की भूमिका है। आध्यात्मिक सौंदर्यबोध छायावादी कविता का केंद्रीय उपकरण है। अपनी उदात्त सीमा पर पहुंचकर वह निखिल विश्व को ब्रह्ममय अनुभव करता है। इस स्थिति में कवि रहस्यवादी है। अंतर दृष्टिकोण में है। जहां तक तथ्य का संबंध है दोनों एक ही तथ्य—आध्यात्मिक सौंदर्य—को मानते हैं। अनुभूति का स्वरूप एक है पर अनुभूति की दशा में अंतर है। प्रकृति के सुंदर अंशों का चयन छायावादी काव्य में है, रहस्यवाद में परस्पर अंतर भूलकर अखंड सौंदर्य तथा समरसचेतना की सृष्टि होती है।

छायावाद सांसारिक वस्तुसत्ता के भीतर एक दिव्य सौंदर्य का प्रत्यय है। उसमें अद्वैत तत्त्व का भास मिल जाता है। काव्य की दृष्टि से छायावाद प्रकृति, मानवजीवन, प्रेम और सौंदर्य को अधिक निगूढ़ रूप से प्रकट करता है। रहस्यवाद में दिव्य प्रेम की स्थापना होती है। प्राकृतिक सौंदर्य एक सार्वजनिक सत्ता है। रहस्यवाद में उसकी स्वतंत्रता आध्यात्मिक सौंदर्य में मिल जाती है। छायावादी काव्य में सौंदर्य और प्रकृति के वर्णन अधिक व्यापक हुए हैं। रहस्यवाद में ईश्वर और जीवन के संबंधों का निदर्शन करते हुए परमात्मा तक पहुंचने का निर्देश किया जाता है। रहस्यवादी काव्य भावदृष्टि से अधिक दार्शनिक एवं साधनात्मक होता है। छायावादी काव्यदृष्टि अधिक मानवीय है। प्रकृति को मात्र प्रकृति न मानकर दोनों उस पर अध्यात्म का आरोप करते हैं। अंतर यह है कि रहस्यवादी काव्य प्रतीक-पद्धति को लेकर चलता है जबकि छायावाद में वस्तु अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती है। रहस्यवादी काव्य में वस्तु विश्वज्योति की प्रतीक-पद्धति पर उद्भावित हुई है।

काव्यवस्तु के विस्तार और भावनाओं के सहज उन्मेष की दृष्टि से स्वच्छंदतावाद सबमें अधिक व्यापक है। उसमें दार्शनिकता अनिवार्य नहीं है। उसकी तुलना में छायावाद और रहस्यवाद अधिकाधिक दार्शनिक हैं। रहस्यवाद में विषय-दृष्टि सीमित होने से काव्यक्षेत्र भी सीमित हो जाता है।

प्रचलित धारणा के अनुसार प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी छायावादी हैं। एक काव्य-आंदोलन के रूप में यह सत्य है, किन्तु वैचारिक दृष्टिकोण से उनमें अंतर है।

'निराला' अधिक स्वच्छंदतावादी हैं। उनके काव्य में दार्शनिक तत्त्व हैं, किन्तु तद्गत सौंदर्य दार्शनिक तथ्य की छाया नहीं। 'संध्यावर्णन', 'यमुना के प्रति'

इत्यादि स्वच्छंद धारा की पोषक कविताएं ही हैं। दार्शनिक सीमा में आबद्ध न होने के कारण निराला का काव्य अधिक स्वच्छंद है। 'तुम और मैं' उनकी एक रहस्यवादी रचना है। इसमें ईश्वर से जीव का संबंध प्रतिपादित है। परिमित वस्तु, और व्यापक वस्तु से अंतर में समाहित है। निराला के काव्य में तीन प्रकार के तत्त्व मिलते हैं—उसमें लौकिक और अलौकिक दर्शन है, कहीं गार्हस्थ्य जीवन का वर्णन है और कहीं सामाजिक विषमताओं का विरोध है। किंतु आध्यात्मिक दर्शन सिद्धांत रूप में स्वीकार न करने के कारण वे स्वच्छंदतावादी हैं।

'पंत को छायावादी कवि कह सकते हैं। वे प्रकृति-प्रेमी हैं—उसमें अध्यात्मसत्ता का अनुभव करते हैं तथा प्रेम और सौंदर्य के अनुगायक हैं। संसार को वे एक नई चेतना से संपन्न देखने की चेष्टा करते हैं। उन्होंने यद्यपि अनेक भावभूमियों को स्थान दिया है—कहीं मार्क्सवादी, कहीं अरविंदवादी—किंतु छायावादी सांसारिक, लौकिक और वस्तुजगत् को प्राथमिक महत्त्व नहीं देता, कल्पना-जगत् में वह अधिक विहार करता है। उसमें अध्यात्म के तत्त्व मौजूद रहते हैं। 'पंत' के 'ज्योत्स्ना' नाटक में प्रतीकरूप में स्वर्गीय ज्योत्स्ना का पृथ्वी पर अवतरण दिखाया गया है। यह छायावादी दर्शन की भूमिका पर ही है। 'पल्लव' या 'गुंजन' में ऐसा ही दर्शन है। पिछली रचनाओं में अरविंद-दर्शन का प्रभाव है। आध्यात्मिक दर्शन होने के कारण वे विशुद्ध छायावादी कवि हैं।

महादेवी का काव्य रहस्यवादी है। शैली उनकी छायावादी है, पर भावभूमि नहीं। उनके लिए सांसारिक परिस्थितियां एक ही तत्त्व का विस्तार हैं, जहां सुख-दुख का भेद मिट जाता है। संसार की सुंदर वस्तुएं अलौकिक सौंदर्य की झांकियां—यह रहस्यवादी प्रवृत्ति उनमें है। उनके काव्य का मेरुदंड है—'किसी प्रेमी के प्रति आत्मसमर्पण की भावना'। संयोग, मान, खीज, रीझ, उपालंभ, आग्रह की भावस्थितियां उसके प्रति व्यक्त की गई हैं। प्रिय और प्रियतमा चूंकि यहां परमात्मा और आत्मसत्ता के प्रतीक बन जाते हैं, अतएव उनका काव्य रहस्यवादी है।

'प्रसाद' के काव्य में प्रारंभ से जिज्ञासा और नियतिवाद का तत्त्व रहा है। तरुण वय की रचनाओं में रहस्योन्मुखता मिल जाती है। 'आंसू' काव्य में आकर प्रसाद प्रेमाख्यान के माध्यम से रहस्यवादी स्वरों को झंकृत करने लगते हैं। यद्यपि वह प्रेम लौकिक है तथापि उसके वर्णन में प्रसाद सांसारिक सुख-दुख की भूमिका को लांघ जाते हैं, और जहां तक उसकी दार्शनिक भूमि का संबंध

है, वह रहस्यवादी है :

मानव - जीवन - वेदी पर
परिणय हो विरह-मिलन का।
सुख - दुख दोनों नाचेंगे
है खेल आंख का, मन का।'

'आंसू' काव्य की गति लौकिक से अलौकिक की ओर है। जहां तक वस्तुवर्णन है वह एक वियोगकाव्य है; स्वच्छंदतावादी काव्य है, जहां काव्य की परिणति होती है, वहां रहस्यवादी दर्शन का पूरा-पूरा प्रत्यय है।

'कामायनी' का दर्शन वाद की श्रेणी में नहीं आता। महाकाव्य जीवन की महान् आकांक्षाओं और युग के प्रतिनिधि होते हैं। वाद के दायरे में खींचना अन्याय है। 'कामायनी' की भावधारा और शैली स्वच्छंदतावादी है तथा शास्त्रीय शैली से भिन्न है। इसका नायक आधुनिक युग का प्रतिनिधि है; उसमें शक्तियां, दुर्बलताएं, अतृप्ति, संघर्ष—सब कुछ है। अतः शास्त्रीय महाकाव्य के नायक से वह भिन्न है। 'कामायनी' स्वच्छंद धारा के नव्यतम काव्यों में प्रतिनिधिरूप है। उसका दार्शनिक आधार शैवदर्शन है। अंतिम सर्ग में सांसारिक भेद-प्रभेदों का आवरण हटाकर समरसता और आनंद की भूमिका अपनाई गई है। मनुष्य सृष्टि का चरम पुण्य है। देखने में जो संघर्ष है वह मानो आनंदतत्त्व को प्राप्त करने की भूमिका है। 'कामायनी' का शैवदर्शन रहस्यवादी दर्शन है।

'पंत' को छोड़कर शेष का जीवनदर्शन रहस्यवादी है। 'पंत' का जीवनदर्शन सौंदर्यवादी है। वस्तुचित्रण के क्षेत्र में वे स्वच्छंदतावादी हैं। निराला भावभूमि की दृष्टि से स्वच्छंदतावादी हैं। दर्शन उनके काव्य में प्रमुख रूप से नहीं है। भावपक्ष को ही उन्होंने प्राथमिकता दी।

अंग्रेजी साहित्य में 'रोमांटिसिज्म' (स्वच्छंदतावाद) और 'मिस्टिसिज्म' (रहस्यवाद)—ये दो शब्द प्रचलित हैं। विशिष्ट काव्य-आंदोलन को 'स्वच्छंदतावाद' की संज्ञा दी गई है। यह 'स्वच्छंदतावाद' एक सीमा पर पहुंचकर 'रहस्यवाद' के समीप आ जाता है। भावना की भूमिका जो स्वच्छंदतावाद में मिलती है वही आगे चलकर दर्शन की भूमिका में रहस्यवाद में परिणत हो जाती है। स्वच्छंदतावाद में कवि के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य का बहुत बड़ा स्थान रहता है। इसी का परिणाम है

कि एक व्यापक काव्य-आंदोलन के प्रमुख लक्षणों से युक्त होकर भी प्रत्येक स्वच्छंदतावादी कवि अपने समानधर्मा अन्य कवियों से भिन्न भी होता है। स्वच्छंदतावाद का परिचय देने के लिए इसीलिए केवल सिद्धांत अथवा कतिपय प्रवृत्तियों का उल्लेख कर देना पर्याप्त नहीं होता। यह भी आवश्यक होता है कि प्रमुख स्वच्छंदतावादी कवियों की विशिष्टताओं का आकलन किया जाए। इंग्लैंड में वड्र्सवर्थ, शैली, कीट्स और विलियम ब्लेक प्रमुख स्वच्छंदतावादी कवि हुए हैं। हिंदी में भी प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी का चतुष्टय हमें प्राप्त होता है। कहने की बात नहीं कि दोनों समूहों के कवियों में पर्याप्त अंतर है। किंतु आकस्मिक संयोग की बात है कि उनमें कुछ साम्य भी है। यदि संक्षेप में कहा जाए तो प्रसाद और वड्र्सवर्थ मानवतावादी हैं, निराला और शेली क्रांतिप्रिय हैं, पंत और कीट्स सौंदर्यवादी हैं तथा महादेवी और विलियम ब्लेक रहस्यवादी हैं।

वड्र्सवर्थ सबसे अधिक व्यापक भूमिका का कवि था। प्रसाद भी सबसे अधिक व्यापक भूमिका के कवि कहे जाते हैं। वड्र्सवर्थ की कविता बड़ी भावात्मक और आकर्षक है, पर कहीं-कहीं उसमें शिथिलता आ गई है। किसी अंश तक प्रसाद में भी यह बात है। इस शताब्दी के द्वितीय दशक की उनकी रचनाओं को पढ़ने से पता चलता है कि उनमें भी यत्र-तत्र शैथिल्य आ गया है। वड्र्सवर्थ दैनिक बोलचाल की भाषा को ही काव्य के उपयुक्त मानते थे, परंतु प्रसाद ने परिष्कृत और अभिजात भाषा का प्रयोग किया। वड्र्सवर्थ ने जनसामान्य के दैनिक अनुभवों को काव्यविषय के योग्य माना। प्राचीनता के विरोध में यह उनका अतिवाद था। प्रसाद प्राचीन काव्यशैली के प्रति विशेष आकर्षण रखते हैं। वे प्रेरणा संस्कृत कवियों से लेते रहे, न कि अंगरेजी कवियों से। परवर्ती रचनाओं में प्रसाद की काव्यधारा में शिथिलता के सूचक अंश स्वल्प हैं। उनकी समस्त सर्जना भारतीय परिवेश के भीतर ही है। पश्चिम की अनुकृति का भाव उनमें कहीं नहीं है।

वड्र्सवर्थ का काव्य मानवतावादी था। उन्होंने गरीब-अमीर के भाव के प्रति विमनस्कता प्रकट की है, साथ ही नैतिक आधार भी माना है। वे प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति के प्रति विशेष भाव होने के कारण उन्हें 'प्रकृति का उच्च पुरोहित' (nature's high priest) भी कहा गया है। नगर को छोड़कर प्रकृति के परिवेश में उन्होंने अपना आवास बनाया। प्रकृति में वे इतने तल्लीन हो गए हैं कि उनके काव्य में एक प्रकार के प्राकृतिक रहस्यवाद की झलक

मिलने लगती है। प्रसाद मूलतः मानवीय भावों के कवि हैं। मनुष्य में वर्गगत या अन्य किसी भेद को मानकर उसकी गहरी एकता का ही उन्होंने अनुगान किया है। उनके 'लहर' काव्य में स्वतंत्र कविता का प्रवाह है। 'कानन-कुसुम' और 'झरना' में आलंकारिक रूप में प्रकृति-प्रेम प्रस्फुटित हुआ है। स्वतः प्रकृति के प्रति कोई भाव विशेष उसमें नहीं। एक रहस्यमयी जिज्ञासा मौजूद है, किंतु वह गंभीर जीवनधारणा की भूमि पर नहीं पहुंचती। 'लहर' में भाव गंभीर हो गया है। संध्या, वर्षा आदि का वर्णन करते हुए उच्च भावनाभूमि तक वे पहुंचते हैं, किंतु फिर भी प्रसाद प्रकृति के कवि नहीं, प्रेम के कवि हैं। वड्र्सवर्थ का काव्य प्रकृति में व्याप्त आत्मा के दर्शन और अनुभूति से ओतप्रोत है। अनेक बार प्रकृति-चित्रण वास्तव में इस आध्यात्मिक भूमिका का निरूपण है। समरसता के आश्रय से प्रसाद के काव्य में भी प्रकृति इस प्रकार आध्यात्मिक चेतना से संपन्न होकर व्यक्त हुई है। परंतु 'आंसू', 'कामायनी', 'लहर' प्रेमकाव्य ही कहे जाएंगे। प्रसाद 'आंसू' में वैयक्तिक प्रेम से आरंभ करके दार्शनिक प्रेम पर पहुंच गए हैं। दर्शन उनकी संवेदनाओं को अधिक गहराई और व्याप्ति प्रदान करता है। फलतः प्रेम का उदात्तीकरण इस काव्य में परिलक्षित होता है। उनकी तीसरी प्रकार की कविताएं दर्शन पर आधारित हैं। उनमें रहस्योन्मुखी दर्शन है। कुछ कविताएं राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावना पर लिखी गई हैं जैसे—शेरसिंह का आत्मसमर्पण। अतः प्रसाद एक उदात्त भाव के कवि हैं, चाहे वे प्रेम के क्षेत्र में हों अथवा दर्शन के क्षेत्र में। कोरा स्वच्छंदतावाद, कोरा विद्रोह का तत्त्व उनमें नहीं है।

'प्रसाद' के काव्य में नियतिवाद भी है। यह नियतिवाद उनके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं से संबद्ध है। सिद्धांततः वे नियतिवादी नहीं हैं। उसका अर्थ होता है अपने पर विश्वास खो देना। प्रसाद यह स्वीकार करते थे कि मानव-व्यापारों में नियति का हाथ है, किंतु उसके रहते हुए भी कहीं यह संकेत नहीं कि मनुष्य अपने कार्यों से विरक्त हो जाए। शुक्लजी ने प्रसाद को 'मधुचर्या का कवि' कहा है। प्रेम इंद्रिय का संवेदनशील स्वरूप है। उसके कारण यह विशेषण उन्हें मिला है। प्रसाद के काव्य में यत्र-तत्र यह पक्ष मिलता है। वे अनेक बार बुद्धिवाद के तत्त्वों की उपेक्षा भी करते हैं, क्योंकि वे आनंदवादी कवि थे। आनंदवाद एक भावनामूलक और दार्शनिक पक्ष है और बुद्धिवाद विचारमूलक पक्ष है। फिर भी उनको मधुचर्या का कवि कहना कहां तक ठीक होगा? इंद्रिय-संवेदना को स्थान देते हुए भी प्रसाद वहां ठहर नहीं गए, वह उनका भावनात्मक स्थल अवश्य है, किंतु उनकी परिणति वहां नहीं होती। वह

परिणति समरसता के तत्त्वदर्शन में होती है।

वड्र्सवर्थ के सिद्धांत और काव्य में चिंतन का पक्ष प्रबल था। चिंतन ने उनके काव्य को गंभीरता प्रदान की। चिंतनप्रधान रचनाओं में एकदम रम जाना संभव नहीं, अतः वे क्लिष्ट रचनाएं हैं। चिंतन अनेक बार काव्यधर्मा न रह कर उपदेशात्मक बन गया है। रचना कब चिंतन होकर भी कविता बनती है तथा दूसरी ओर संदेश देने का भी काम करती है? वास्तव में वह रूप निर्माण करने की, मूर्तिमत्ता की क्षमता है। उसके अभाव में कोरा संदेश काव्य नहीं बन सकता। चिंतक कवि ही एक सीमा पर पहुंचकर संदेशवाहक बन जाता है। वड्र्सवर्थ के काव्य में संदेश देने का कार्य जीवनचित्रण के माध्यम से हुआ है। प्रसाद का काव्य भी चिंतनप्रधान काव्य है। उसमें वह वस्तु है, जिसे दार्शनिक या सांस्कृतिक स्तर कहते हैं।

शेली के संबंध में जहां तक वायवीय भावना का प्रश्न है, वे पंत के समीप हैं, और जहां विकसित काव्य का पक्ष है, वे निराला के समीप हैं। निराला में विद्रोह की वाणी है। शेली भी विद्रोह के कवि हैं। आदर्शमूलक समाजवादी क्रांति के दर्शन का आश्रय लेकर शेली ने अपनी रचनाएं की हैं। उनकी कविता 'रिवोल्ट' या क्रांतिकारी भाव की व्यंजना करती है। उसमें एक तेजस्विनी प्रतीकात्मकता है। निराला के 'बादल राग' की भी यह विशेषता है। शेली के 'प्रोमेथ्यूज़', 'अनवाल्ड' में स्वातंत्र्य की भावना की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति है। उसमें गंभीरता का प्रयत्न भी है। उनके द्वारा स्वीकृत दर्शन एक समसामयिक प्रगतिशील दर्शन है। कला पक्ष में उन्हें चमत्कार की सृष्टि करने वाला माना गया है, साथ ही रंगों की उत्कृष्ट योजना उनके काव्य में पाई जाती है। उनकी शैली में दो स्तर हैं—अलंकृत शैली और सरल शैली। निराला भी वृहत सामाजिक परिवर्तन की मांग करनेवाले कवि हैं। उन्हें प्रेरित करने वाला दर्शन वेदांत है, जो विवेकानंद का स्पर्श पाकर प्रजातंत्र और समाजवाद की भावनाओं से भी युक्त हुआ था। सृष्टि की एकता के आधार पर उन्होंने अनेक कविताओं की रचना की है। अलंकृति और चमत्कार के प्रति उनकी भी अभिरुचि है। लंबे-लंबे वाक्यों और समासों की अलंकृत शैली के साथ प्रसादगुण से युक्त सरल शैली का प्रयोग भी निराला ने किया है। आलंकारिक और सरल रीतियों के अतिरिक्त एक और शैली निराला के काव्य में प्रयुक्त है। उसे हम विनोदात्मक शैली कह सकते हैं। इसमें उन्होंने विभिन्न भाषा के शब्दों का योग चमत्कार और विनोद की सृष्टि के लिए किया है।

शेली और निराला में थोड़ा अंतर भी है। निराला का झुकाव महाकाव्यत्व की ओर है। भव्यता और औदात्य के प्रति उनकी सहज उन्मुखता है। उनमें पौरुष गुण की प्रधानता है। शेली की रचना में यद्यपि विद्रोह की वाणी है तथापि पौरुष उदात्त भूमिका पर न जाकर दुखांत(tragedy) के निकट पहुंच गया है। निराला का काव्य उदात्त कोटि का है। अतः महाकाव्य की धारा के समीप है।

कीट्स में सौंदर्य की प्रधानता है। वे सौंदर्य को सत्य मानते हैं—जो सत्य है वही सुदंर है, जो सुंदर है वही सत्य है। इसी प्रकार की धारणा पंत की भी है। पंत प्रकृति के कवि हैं। काव्य में सौंदर्य का तत्त्व, सृष्टि के प्रति सौंदर्यभावना का आरोप, यह पंतकाव्य की मूलभूत विशेषता है। कीट्स भी इस संसार की भावनाओं से मुक्त था, इसलिए उसकी भाषा में सौंदर्य निखर आया है। कीट्स को कर्कश शब्दों का प्रयोग पसंद नहीं था। अतः छांटकर वैसे शब्द उसने निकाल दिए और अंगरेजी भाषा का परिष्कार किया। ग्रीक संस्कृति और कलादर्शों के प्रति उसमें भावनात्मक आग्रह था, इसलिए उसे क्लासिकल प्रवृत्ति का कवि भी कहा गया है। तुलना में पंत की भाषा सबसे अधिक असाधारणता के स्तर पर है। 'है' क्रिया का प्रयोग तो उन्होंने किया ही नहीं। 'पल्लव' की भूमिका से स्पष्ट है कि पंत भाषामार्जन के कवि हैं। इस मार्जन के अनुसार कोमलता लाने के लिए लिंग प्रयोग में भी उन्होंने स्वतंत्रता बरती है। भाषा की अपनी सत्ता है, किंतु पंत उन नियमों की भी उपेक्षा करने को तैयार हैं। उनकी भाषापरिष्कार की योजना इसके प्रति उत्तरदायी है। कीट्स को पलायनवादी कवि भी कहा गया है। कटुता से ऊबकर उसने दूसरे लोक की कल्पना की है। अतः उसके काव्य में सामान्यताएं नहीं हैं, आदर्शजगत के रूप ही मिलते हैं। पंत ने जहां कहीं भी कल्पना की है, वहां नई दुनिया, नए संसार का स्वप्न देखा है। इसीलिए पंत के काव्य में एक अकाव्यात्मक व्यापार और वस्तुस्थिति भी है। कीट्स में यह नहीं। पंत शतप्रतिशत कवि नहीं, व्याख्याता भी हैं। कीट्स शतप्रतिशत कवि है।

ब्लेक और महादेवी की तुलना केवल इस आधार पर की जा सकती है कि दोनों में रहस्योन्मुख प्रवृत्तियां पाई जाती हैं, दोनों में भावुकता का प्राबल्य है, और दोनों चित्रकार भी हैं। परंतु ब्लेक स्वच्छंदतावादी आंदोलन के अरुणोदय का प्रतिनिधि है और इस नाते उसमें क्रमागत नैतिकता, आचार व्यवहार, प्रचलित बौद्धिक धारणा और विश्वासों के प्रति मौलिक विद्रोह है। एक बालकोचित

सरलता के साथ एक पारदर्शी चेतना से संपन्न ब्लेक महादेवी से बहुत भिन्न हैं। उनके काव्य में नियमों की अवहेलना है, छंदों की अराजकता है, जबकि महादेवी में सब शालीन और संयमित बल्कि अतिसंयमित है। ब्लेक में निगूढ़ अंतश्चेतना का प्रबल आवेग है, जबकि महादेवी में आवेग नामक तत्त्व क्षीण है। दोनों ही प्रतीकों के प्रयोक्ता हैं, परंतु ब्लेक के प्रतीक अयाचित चलते हैं, अविचारित संकलित होते हैं। महादेवी के प्रतीकों में बौद्धिकता का प्रचुर योग है। महादेवी छायावादी काव्ययुग की सांध्यतारा है, ब्लेक भोर का नक्षत्र है। इस अंतर के साथ ही इन दोनों के काव्य का अनुशीलन किया जा सकता है।

अध्याय दो

छायावाद की प्रगीतसृष्टि और पंत का प्रवेश

ANANDARAM DHEKIAL PHOOKAN COLLEGE LIBRARY
Acc. No.....
Date.....
NAGAON : ASSAM

जिस समय छायावाद की नई संतति कविता के क्षेत्र में आई, समाज की सामान्य स्थिति सुधर रही थी। पिछली पीढ़ी के परिश्रम और साधना के फलस्वरूप हमारे घरों में थोड़ी-सी सभ्यता आ गई थी। हम पढ़-लिखकर तैयार हो रहे थे और हमारी गृहिणियां भी निरी अपढ़ नहीं रह गई थीं। हमारे घरों में सौ-पचास पुस्तकें और दो-चार चित्र भी दिखाई देने लगे थे। स्थिति ऐसी थी कि हम अपने उद्यमी पूर्वजों से कुछ आगे ही बढ़ने की धुन में थे। आलसी और अकर्मण्य बनानेवाली अतिशयता तो हमारे पास न थी, पर हम अपनी गृहस्थी पर थोड़ा-बहुत नाज कर सकते थे। हममें अपनी पिछली पीढ़ी के सभी प्रगतिशील संस्कार मौजूद थे, पर अपने पूर्वजों की अपेक्षा हम कुछ अधिक ऊंची आकांक्षा रखने लगे थे। तुलनात्मक दृष्टि से हम अधिक साधनसंपन्न थे, यद्यपि वह स्वतंत्रता हमें सामाजिक उत्थान की पहली सीढ़ी तक ही पहुंचा सकी थी। हम अब आगे की सीढ़ियों की ओर पैर बढ़ाना चाहते थे।

प्रथम विश्वमहायुद्ध ने हमें पश्चिमी समाज के हल्के-से संपर्क में ला रखा और हम साहित्य तथा अन्य साधनों से पश्चिम की अधिकाधिक जानकारी करने लगे। महायुद्ध की परिस्थितियों ने हमारी जातीयता की कट्टर भावना को बहुत कुछ शिथिल कर दिया और अब हम उस भूमिका पर आ गए जब जातीय और प्रादेशिक सीमाओं से ऊपर उठकर विश्व की प्रगति को एक निगाह देख सकें। भारतीय और विदेशी जीवनपद्धति और राष्ट्रीय गुणों को भी जानने-समझने और तुलना करने का अवसर हमें मिलने लगा था। हमारी दृष्टि पुरानी धार्मिक रीतियों से हटकर जीवन के दार्शनिक आधारों पर जाने लगी थी। हम मोटे तथ्यों से ध्यान हटाकर उनके प्रेरक सूक्ष्म उपकरणों को देखना चाहते थे। संक्षेप में नई संस्कृति और नवीन जीवनदृष्टि के निर्माण की दिशा में हम अग्रसर हो रहे थे।

इसी अवसर पर गांधीजी के रूप में एक महान व्यक्तित्व भारतीय रंगमंच पर

अवतरित हुआ और देश में राजनीतिक चेतना की एक अभूतपूर्व लहर दौड़ गई। जलियांवाला बाग की दुर्घटना हुई और एक विराट जन-आंदोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उभर उठा। आहुतियां पड़ती गईं। और आग भड़कती गई। गांधीजी और उनके सहकारियों के निरीक्षण में स्वतंत्रता का यह महायज्ञ चलता रहा। बीच-बीच में व्यवधान आए, राजनीति की धारा नए मोड़ लेती रही, वह गुमसुम होकर चुपचाप भी बही। निराशा की रेखाएं भी भारतीय क्षितिज पर दिखाई दीं, पर राजनीतिक उतार-चढ़ावों के होते हुए भी हमारी राष्ट्रीय चेतना अव्याहत ही रही। इस सर्वतोव्यापी सक्रिय राष्ट्रीयता का प्रभाव हमारे इस समय के साहित्य पर अनेक रूपों में अनेक प्रकार से पड़ा। हम तो यहां तक कहना चाहेंगे कि इस व्यापक राष्ट्रीय जागृति की हलचल में ही हमारा यह साहित्य पनपा और फूला-फला है। इस अभूतपूर्व जागृतिकेंद्र से पृथक् रखकर हम अपने इस साहित्य को परख ही नहीं सकेंगे।

खेद और आश्चर्य की बात है कि हमारे कतिपय समीक्षकों ने इस अत्यंत सीधी और सच्ची बात को भी समझने की चेष्टा नहीं की कि हमारे इस युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथा इससे भिन्न वह कुछ और हो भी नहीं सकती थी। राष्ट्रीयता ने हमारे समस्त सामाजिक जीवन को अनेक रूपों में आंदोलित कर रखा था और हमारे कवि और लेखक भी इस दुर्दमनीय प्रभाव से बच नहीं सकते थे; विशेषकर जिन्हें हम इस समय का प्रतिनिधि लेखक और कवि मानते हैं, उन पर इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव तो पड़ना ही था। यह सोचना भी असंभव है कि जिस समय हमारे देश में राष्ट्रीय मुक्ति का जीवन-मरण संग्राम चल रहा हो, उस समय हमारे कल्पनाशील कवि और लेखक उससे कुछ भी प्रेरणा न ग्रहण करें, बल्कि उसके प्रति विमुख और अन्यमनस्क होकर रहें।

फिर भी हमारे कतिपय समीक्षकों ने उन्हें इसी रूप में चित्रित करने की चेष्टा की है। कुछ ने उन्हें व्यक्तिवादी और अंतर्मुख कलाकार कहकर समाज की प्रगतिशील चेतना से दूर ठहराया है; कुछ ने उन्हें पलायनवादी संज्ञा देकर जीवन से उनकी विमुखता सिद्ध करनी चाही है, कुछ ने उनकी तुलना वाई० बी० ईट्स० और टी० एस इलियट जैसे कवियों की भावधारा से की है, जो भारतीय परिस्थिति से नितांत भिन्न स्थितियों में रचना कर रहे थे और जिनके सामने राष्ट्रीय संघर्ष का ऐसा सजीव और सक्रिय वातावरण न था, जैसा हमारे देश में आद्यंत रहा है। शेष कुछ समीक्षकों ने उन्हें 'मधुचर्या का प्रेमी', 'स्वप्नद्रष्टा'

या 'अनंग का उपासक' बताकर उनकी असामाजिकता का विज्ञापन किया है। सच तो यह है कि अपने वादों-प्रवादों को लेकर जिसने जैसा चाहा और जिसे जिस बात में अपने मत की पुष्टि दिखी, उसने वैसा ही बयान दे दिया है। समीक्षा में मतवादों का प्राधान्य हो जाने पर साहित्यिक रचनाओं की वास्तविक परख और मूल्यांकन में कैसी कठिनाइयां आ जाती हैं, यह इन समीक्षकों के उदाहरणों से समझा जा सकता है।

वस्तुतः हम देखते यह हैं कि इस युग के आरंभ से ही एक नई चेतना साहित्य में प्रवेश कर रही थी। नवजागृत राष्ट्रीयता की प्रेरणा से कितने ही नए कवि और लेखक नया साहित्य निर्माण करने लगे थे। असहयोग आंदोलन से उतना सीधा संबंध मैथिलीशरण का नहीं था, जितना उनके छोटे भाई सियारामशरण का था। गांधीजी द्वारा प्रवर्तित राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन की पहली ही हलचल में सियारामशरण के भावुकतापूर्ण आख्यानगीत और रामनरेश त्रिपाठी की 'सुमन', 'पथिक' और 'मिलन' जैसी रचनाएं प्रकाशित हुईं। ठाकुर गोपालशरण सिंह की रचनाओं में भी एक नया प्रभाव देखा गया और गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तो अत्यंत सीधी और प्रभावपूर्ण 'राजनीतिक कविता' करने लगे। राष्ट्रीय आंदोलन की इस पहली बहार में ही हिंदी साहित्य को इन नए कवियों और लेखकों का उपहार मिला।

परंतु ये कवि और लेखक राष्टीय आंदोलन के इतने सीधे प्रभाव में थे कि उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को 'राजनीति या सामाजिक आख्यानों' की सीमा में ही बांध दिया। किंतु इतनी सीधी और तात्कालिक प्रेरणा से की गई रचनाओं में कदाचित् उतनी काव्यात्मक व्यापकता नहीं आती, जितनी श्रेष्ठ काव्य के लिए उपेक्षित होती है। किसी भी राष्ट्रीय आंदोलन के कतिपय पहलुओं को ज्यों का त्यों चित्रित कर देना अथवा उस आंदोलन की तात्कालिक प्रतिक्रिया में कोई रचना प्रस्तुत कर देना कवि की भावना और कल्पना का अधूरा ही आभास कहा जाएगा। इतनी 'प्रत्यक्षता' काव्यसाहित्य के लिए लाभकर नहीं होती। इस प्रक्रिया में न तो कविकल्पना का पूरा पाचन हो पाता है, न रचयिता के भावों के साथ उसके सांस्कृतिक और साहित्यिक सामर्थ्य का पूरा योग हो पाता है। साहित्य कोरी राजनीति नहीं है, न वह राजनीतिक भावना का उच्छ्वास मात्र है। साहित्य वास्तव में कवि की भावसत्ता के साथ उसके संपूर्ण व्यक्तित्व का समाहार है।

पुराने विवेचकों ने हमें यह समझाया है कि आख्यानक या कथात्मक काव्य

मुक्तक या प्रगति की अपेक्षा काव्यदृष्टि से अधिक प्रशस्त या समुन्नत होता है और इसके कई कारण भी उन्होंने बताए हैं। प्रबंध काव्य या सर्गबद्ध रचना लंबी होती है और उसमें जीवन के अनेकानेक रूपों और मानवसंबंधों का चित्रण और व्याख्या की जा सकती है। यह बात अंशतः ठीक हो सकती है, पर दूसरी दृष्टि से देखने पर प्रगीत की विशेषताएं भी स्पष्ट हो जाती हैं। प्रगीतकाव्य में कवि की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, उसमें किसी प्रकार के विजातीय द्रव्य के लिए स्थान नहीं रहता। प्रगीतों में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है। कथानक-काव्यों में जीवन के भावात्मक संघर्ष और चरित्रों की रूपरेखा रहा करती है, पर कवि के अंतस्तल का उद्घाटन प्रगीत में ही संभव है। प्रबंधकाव्य में दृश्यचित्रण और वस्तुचित्रण के साथ बहुत-सा इतिवृत्त भी लगा रहता है, परंतु प्रगीतरचना में कविता इन समस्त उपचारों से विरत होकर केवल कविता या भावप्रतिभा बनकर आती है। संगीत के स्वरों की भांति प्रगीत के शब्द ही अपनी भावना-इकाइयों से कविता का निर्माण करते हैं, उनमें शब्द और अर्थ, लय और छंद अथवा रूप और निरूप्य की अभिन्नता हो जाती है। प्रबंधकाव्य कविता का आवृत्त और आच्छादित रूप है। प्रगीतकाव्य उसका निर्व्याज निखरा हुआ स्वरूप है। प्रबंधकाव्य यदि कोई रसीला फल है जिसका आस्वादन छिलके, रेशे और बीज निकालने पर ही किया जा सकता है, तो प्रगीतरचना उसी फल का द्रवरस है, जिसे हम तत्काल घूंट-घूंट पी सकते हैं।

ऊपर जिस नई प्रगीतसृष्टि की चर्चा की गई है, उसके आरंभिक स्रष्टा कानपुर की 'प्रभा' के कवि थे। इनमें माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं। एक नए काव्यस्वरूप का नवनिर्माण बड़े भावुक हाथों से हो रहा था। राजनीतिक और राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित ये प्रगीत स्वरूप में अति लघु और संख्या में अति स्वल्प थे, जिससे यह सूचित होता है कि प्रगीत की कला हिंदी में अभी-अभी अवतरित हो रही थी। परंतु नई कविता का यह नया वाहन इन राष्ट्रीय कवियों द्वारा भी पूरी तरह तैयार न किया जा सका। अभी इसका परिपूर्ण विकास शेष था। कवि प्रसाद, मुकुटधर पांडेय और रूपनारायण आदि स्वतंत्र रीति से इस नए भाजन (प्रगीत) का निर्माण करने में लगे हुए थे। ये कवि केवल 'राष्ट्रीय' न थे, ये नवजीवन की अधिक व्यापक भावनाभूमि पर काम कर रहे थे। प्रसाद का 'झरना' नए जीवनस्रोत से समन्वित था। रूपनारायण के 'वनवैभव' में नई स्वच्छंद भावना का अच्छा योग था। 'हे मेरे जीवन की सरिता आंखों के आंसू में ढल जा',

'हे अनजान विदेशी आज' जैसी रचनाओं में नए युग की भावना और कविकी वैयक्तिक चेतना या संवेदना समस्त साहित्यिक-सामाजिक रूढ़ियों और पूर्व संस्कारों का बोझ त्यागकर निरावरण हो रही थी; और उसी मात्रा में नए प्रगीतस्वरूप का भी निर्माण और निखार हो रहा था।

इस निर्माण की रही-सही कमी पूरी की पंत और निराला ने, जिन्होंने नए प्रगीत का नितांत नई कल्पना से अभिषेक किया, भाषा की नई वेशभूषा दी, अभिव्यंजना की नूतन मुद्राएं और भंगिमाएं भेंट कीं। कविता कामिनी अब नए स्वरूप में सजकर प्रस्तुत हो गई। इसे नया रूप और नई कांति, नया कलेवर और नई लयगति इन दोनों कवियों ने प्रदान की। प्रगीत नए युग का काव्यप्रतीक बना। इसके निर्माण में किसी ओर से (नई भावना, नई अभिव्यंजना अथवा नए काव्यसांचे की दृष्टि से) कोई कमी तो नहीं रह गई है, इसी की परीक्षा के लिए निराला ने इस नए काव्यपात्र (प्रगीत) को ठोकबजा कर देखा, मुक्त छंद के द्वारा इसे बलपूर्वक झकझोर कर देखा और जब किसी ओर से कोरकसर नहीं दिखी, तब इसे नए युग के प्रतिनिधि काव्यभाजन की प्रतिष्ठा दी गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रगीतकाव्य में शब्द और अर्थ, लय और छंद तथा रूप और वस्तु एक-दूसरे के समीप आकर अभिन्न हो जाते हैं। इसी के साथ यह भी जान लेना चाहिए कि प्रगीत में कवि की भावना-कल्पना, उसकी अभिव्यंजना और उसके द्वारा निर्मित प्रगीत के रूप में भी एकता या तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उसी अवस्था में प्रगीत अपने वास्तविक काव्योत्कर्ष को प्राप्त करता है। इन द्विविध तत्त्वों के एकदम समीप आ जाने और अंतर खो देने में ही प्रगीत का प्रगीतत्त्व है। इस दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं कि प्रगीतकाव्य की निर्मात्री भावना में और उस भावना द्वारा निर्मित प्रगीतभाजन में तात्त्विक एकता होती है। एक विशेष प्रकार (या अवसर) की भावना या अनुभूति, जिसमें कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह खो गया हो और साथ ही जिसमें किसी रूढ़ भावना या संस्कार का योग न हो, प्रगीत का निर्माण करती है। अतएव इस काव्यरूप (प्रगीत) के निर्माण में इस युग की काव्यभावना का इतिहास भी संलग्न है, यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। दूसरे काव्यरूपों या काव्यभाजनों का विकास भी युगों की काव्यसाधना का परिणाम होता है, परंतु प्रगीत का कवि के व्यक्तित्व और उसकी निजी भावना से एकमात्र संबंध होने के कारण (संक्षेप में प्रगीत के 'सब्जेक्टिव आर्ट' होने की विशेषता के कारण) नए युग के इस काव्यरूप के विकास में नवीन कवियों की

भावनाधारा का विकास भी छिपा हुआ है।

नए युग में प्रगीत के इस काव्यरूप के विकास का अध्ययन इसीलिए अत्यंत मनोरंजक है। हम मैथिलीशरण को वह केंद्रबिंदु मान सकते हैं जहां से नवीन आख्यानक काव्य और साथ ही नवीन प्रगीत की एक साथ उद्भावना होती है। गुप्तजी की आरंभिक काव्यरचनाएं, जिनका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, निबंधात्मक होती थीं। इन निबंधों में कभी किसी आख्यान का माध्यम रहा करता था और कभी बिना आख्यान के ही कोई बात कही जाती थी, जैसे—'नर हो न निराश करो मन को।' गुप्तजी के इन दोनों आरंभिक काव्यप्रकारों में निर्माण की दृष्टि से अधिक अंतर नहीं था, थोड़ा बहुत अंतर था तो आकार का। आख्यान कुछ लंबे होते थे और निराख्यान रचनाएं कुछ छोटी होती थीं (यद्यपि इसके अपवाद भी मौजूद हैं और मिल जाते हैं)। गुप्तजी के इन्हीं प्रारंभिक प्रयोगों से नवीन कथानककाव्य की और नवीन प्रगीतकाव्य की सृष्टि माननी चाहिए। कथानककाव्य तो स्वयं गुप्तजी के खंडकाव्यों, भक्तजी के 'नूरजहां' काव्य और 'हल्दी घाटी' जैसे वीराख्यानों को पार करता हुआ 'कामायनी' की प्रतिनिधि काव्यसृष्टि में परिणति के बाद भी 'कुरुक्षेत्र' और 'कैकेयी' जैसी नवीन कृतियां प्रस्तुत की गईं, परंतु प्रगीतकाव्य के विकास की मंजिलें और भी स्पष्ट हैं। मैथिलीशरण के प्रौढ़ काल के भावगीत, हरिऔध तथा उनके समसामयिकों की 'चतुर्दशपदिया' आदि नवीन प्रगीत के आरंभिक प्रयोग हैं। इनमें कवि के व्यक्तित्व का योग आंशिक है। वे विषयप्रधान और वस्तून्मुखी कृतियां हैं। दूसरे चरण में माखनलालजी के वे स्फुट मुक्तक-गीत आते हैं जो आकार में प्रायः छोटे और अभिव्यंजना में प्रायः थोड़ी-सी जटिलता लिए होते हैं। इनके आकार में ज्यों ही कुछ वृद्धि होती है, जटिलता और बढ़ने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की भावना अधिक विस्तार सहन नहीं करती। कदाचित् इसीलिए 'चाह नहीं है सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं' जैसी छोटी रचनाएं अधिक निर्दोष हैं और प्रगीत का पूरा आभास लिए हुए हैं। निश्चय ही वे गुप्तजी के वस्तुप्रधान भावनागीतों से एक श्रेणी आगे की कलासृष्टि है। तीसरा महत्त्वपूर्ण योग स्वयं प्रसाद का है जिनके 'आंसू' के पहले प्रगीतों में भी नई कल्पना का योग हो चुका था। 'आंसू' पर पहुंचते-पहुंचते हिंदी प्रगीत अपनी पंखुड़ियां खोलने लगा था, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि प्रगीत का परिपूर्ण विकास निराला और पंत की रचनाओं में ही दिखाई दिया। निराला में प्रयोगों का बाहुल्य है जो उनके काव्याधिकार का परिचायक है। उन्होंने प्रगीत की अनेक शैलियों का आविष्कार किया। पंत की प्रगीतसृष्टि में

कल्पना और सौंदर्यानुभूति चरम सीमा पर पहुंची हुई है।

सुमित्रानंदन पंत जब अपनी 'वीणा' लेकर हिंदी में आए, तब हिंदी प्रगीत की परमोच्च संभावना उनमें केंद्रित हो गई। कुछ वर्षों तक उन्होंने हमारी इस आशा को पल्लवित भी किया। उनके आरंभिक प्रगीतों में भावना की जो स्वच्छता, कोमलता और रमणीयता पाई गई और भाषा की जो अनुपम मिठास और परिष्कृति देखी गई, वह कदाचित् विश्व के थोड़े कवियों की आरंभिक रचनाओं में देखी और पाई गई होगी। इसलिए 'वीणा', 'ग्रंथि', 'उच्छ्वास' और 'पल्लव' के कवि में यदि हिंदी काव्य अपनी उच्चतम पहुंच और उज्वलतम भविष्य का आभास पाने लगा, तो यह अनुचित या असंगत न था। 'वीणा' की पहली मीठी झंकार से लेकर 'पल्लव' में 'परिवर्तन' के मंद-गंभीर संगीत तक पंत का विकासक्रम अत्यंत स्वाभाविक और उपयुक्त रीति से परिस्फुट होता गया है। 'वीणा' की अभिनव कोमल आदर्शवादिता और तरल बालभावना से आरंभ कर 'उच्छ्वास' की ईषत् वैयक्तिक प्रेमचर्चा में किशोर वय की सुंदर झांकी देखते हुए हम 'ग्रंथि' में वियोग या विच्छेद की एक मर्मपूर्ण अनुभूति तक पहुंचते हैं। 'पल्लव' की रचना इस वैयक्तिक अनुभूति के अवसाद से दूर होकर अतिशय सजीव कल्पनासृष्टि का रूप ग्रहण करती दिखाई देती है। 'परिवर्तन' में आकर हम जगत और जीवन के संबंध में कवि की मनस्वी धारणाएं अत्यंत सुंदर रूपकों के आवरण में देख पाते हैं। ये रूपक उन सुंदर प्रस्तरखंडों के सदृश हैं जिनकी सहायता से कवि अपनी आगामी विशाल निर्माण की भूमिका बांधता जान पड़ता है। इसी समय हम हिंदी प्रगीत की उच्चतम परिणति की कल्पना करने लगे थे। सन् 25 से 35 तक हमें मिलना था, शेली का वह विद्रोही स्वर, उसकी वह दिगंतगामिनी पुकार, जो युग को नहीं, युगों को अपने नैसर्गिक आह्वान से चकित और विस्मित कर देती है। हमें मिलना था गांधी की ज्वलंत दार्शनिकता, प्रखर साम्यवाणी और अबाध क्रियाशीलता का तेजस्वी काव्य प्रतिरूप। परंतु खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि हमें मिले 'ज्योत्सना' और 'गुंजन', 'गीतिका' और 'कुकरमुत्ता' तथा कुछ अन्य भली-मीठी रचनाएं, किंतु ओजस्विता और महान निर्माण की प्रेरणा से बहुत कुछ रिक्त।

अपने मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए हम यह कहना चाहते हैं कि हम हिंदी प्रगीत से गांधीवाद या गांधीनीति का खाका नहीं चाहते थे, न गांधी के आदर्शों अथवा उनकी जीवनी का चित्रण या स्तवन ही हमें अभीष्ट था। हम तो प्रतीक्षा करते थे उस उदात्त और तेजस्वी स्वर की, उस सरल, निष्कपट और अडिग

वाणी की जो हमारी राष्ट्रीय क्रियाशीलता का सच्चा काव्यप्रतिबिंब होती, जो वर्गों की विडंबना से हीन, विश्व को सर्वयुगीन साम्य का संदेश दे सकती। संक्षेप में हम गांधी के सजीव व्यक्तित्व का काव्यस्मारक चाहते थे; पर ऐसा जान पड़ता है कि किसी महान व्यक्तित्व अथवा महती क्रियाशीलता को काव्य में मूर्तिमान करने के लिए कुछ समय का अंतर आवश्यक होता है। कदाचित् प्रगीतकाव्य इसके लिए अच्छा माध्यम भी न माना जाए।

'ज्योत्सना' और 'गुंजन' तक हम किसी प्रकार धैर्य कर सकते थे, पर इसके पश्चात् नहीं। पर इसके पश्चात् ही पंत ऐसे बिछले कि हमारी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। वे प्रगति के भावनाक्षेत्र से बाहर निकल कर ऐसी सृष्टियां करने लगे जिन्हें साहित्य में 'प्रगीत' की संज्ञा तो नहीं दी जा सकती। पर आश्चर्य तो यह है कि अपने इस अकाव्यत्व का ज्ञान स्वयं पंत को तो था, पर उनके किसी भी प्रशंसक या समीक्षक को नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल से लेकर प्रकाशचंद्र गुप्त और शिवदान सिंह चौहान सभी इस भयंकर दुर्घटना में ग्रस्त हो गए और हिंदी साहित्य को भी इसी दुर्घटना का शिकार बना गए। आगे चलकर जब पंत ने एक मोड़ लिया और मार्क्सदर्शन से अरविंददर्शन की ओर आए, तब सहसा हमारे प्रवीण साहित्यिक मित्र रामविलास शर्मा ने यह पहचाना कि पंत अपने 'पल्लव' वाले काव्यस्तर से कितनी दूर चले गए हैं। 'हंस' में प्रकाशित 'उत्तरा' की आलोचना उनकी असंदिग्ध साहित्यमर्मज्ञता का प्रमाण है। ऐसी मार्मिक समीक्षाएं आज के जमाने में कम ही देखने को मिलती हैं। पर पता नहीं रामविलास शर्मा ने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' आदि पर इसी प्रकार कृपादृष्टि क्यों नहीं की।

अंत में इतना ही कहना है कि सन् 32 या उसके आसपास से पंत कवि के बदले कलाकार अधिक हो गए और काव्यरचना के स्थान पर कुछ ऐसी कृतियां करने लगे जो ललित की अपेक्षा उपयोगी अधिक थीं अथवा जो, सीधे ही क्यों न कहें, काव्य की अपेक्षा काव्याभास अधिक थीं। साहित्य और कविता की शैलियां बदलती हैं, पैमाने बदलते हैं, पर इतना नहीं कि कविता और साहित्य बेपहचान हो जाएं। हम यह भी मानते हैं कि पंत सरीखे प्रतिभावान कवि फिसलते-फिसलते भी कहां तक फिसलेंगे। अब भी उनकी समस्त कृतियों में सुंदर कलाकौशल है, यत्र-तत्र मार्मिक रूपयोजना और सूक्ष्म वस्तुचित्रण है, पर जहां तक प्रगीतकाव्य का संबंध है, हिंदी का शेली हिंदी में आता-आता ही रह गया।

अध्याय तीन

पुष्पोपहार (पंत का व्यक्ति और काव्य)

पंतजी से मेरी पहली मुलाकात सन् 1931 में हुई थी। शायद वर्षा बीत रही थी और शरदागम हो रहा था। मैं उन दिनों प्रयाग में 'भारत' पत्र का संपादन करता था, और लीडर प्रेस के पास ही लूकरगंज मुहल्ले में रहता था। उन दिनों 'भारत' में मेरी 'प्रसाद-निराला-पंत' लेखमाला प्रकाशित हो रही थी। प्रसाद और निराला के निबंध पूरे हो चुके थे। कदाचित् अगले अंक में ही पंत पर लेख छपने वाला था। एक दिन पूर्व ही पंत ने समाचार भेजा कि वे मिलने के लिए मेरे घर आ रहे हैं। प्रातःकाल मैं उनकी प्रतीक्षा कर ही रहा था कि वे अपने मित्र श्री रामचंद्र टंडन के साथ उतरकर मेरे बंगले पर आ गए। उनकी वेशभूषा अपटुडेट विलायती ढंग की थी। सूट पहने हुए थे। उनके बाल खूब करीने से सजे हुए—बाबशैली में संवारे गए थे, तेल न लगा होने के कारण वे कुछ रूखे और छितराए हुए थे। उनका मुख दीप्तिमान था, पर वह दीप्ति पुरुषोचित न थी। रंग काफी निखरा हुआ—गौर ही कहा जा सकता था। इसके पूर्व मैंने उनके जो दो-एक चित्र देखे थे, उससे मुझे उन्हें पहचानने में देर न लगी।

आते ही उन्होंने मेरी लेखमाला पर मुझे बधाई दी, और मेरे पूछने पर अपनी जीवनी और काव्य के संबंध में थोड़ी-सी चर्चा आरंभ की। मुझे स्मरण है कि उस समय तक निराला की 'परिमल' पुस्तक की भूमिका में ही पंत के काव्य पर कुछ विचार व्यक्त किए गए थे। कदाचित् उन्हीं को आधार बनाकर पंत ने बातचीत आरंभ की थी। निराला ने पंत की कविता पर एक आपत्ति यह की थी कि उसके सभी चित्र अलग-अलग हैं, भाव की कोई संयोजक रेखा उनको मिलती नहीं। रवींद्र की भांति भावगुंफन की प्रवृत्ति पंत में नहीं है, और न उनकी भांति विराट का आभास देने वाली ऊर्जस्वी कल्पनाएं ही उन्होंने की हैं। इन दो बातों को छोड़कर निराला के वक्तव्य में पंत की मुक्त हृदय से प्रशंसा की गई थी। पंत ने निराला के आरोपों के उत्तर में जो बातें कहीं वे

अपनी वाक्यावली में अतिशय संयत तो थीं ही, साहित्यिक विवेचन की दृष्टि से कम मार्मिक न थीं। उनका कहना था कि सभी कवि एक ही शैली के नहीं होते, भिन्नता में ही मौलिकता होती है। सभी कवि विराट और ऊर्जस्वी चित्र देने के लिए बाध्य नहीं हैं। परख यह होनी चाहिए कि जो शैली जिस कवि ने अपनाई है, उसके अनुरूप काव्य उपकरणों का संचय वह कर सकता है या नहीं। मुझे पंत का यह विवेचन पसंद आया, क्योंकि वह सारगर्भ था। यद्यपि पंत के इन तर्कों का उपयोग मैंने अपनें आगामी निबंध में नहीं किया, पर उनकी इस पहली भेंट का मुझ पर यह प्रभाव तो पड़ा ही कि पंत संबंधी मेरी यह लेखमाला पर्याप्त प्रशंसात्मक बन गई अथवा यह कहूं कि मैंने उसे भरसक प्रशंसामूलक बनाने का प्रयत्न किया। मेरे मुख्य विचार तो उसमें आए ही, पर मेरी शब्दावली अधिक आत्मीयता समन्वित हो गई।

उन्हीं दिनों की एक घटना याद आती है। मेरे गुरुदेव बाबू श्यामसुंदरदास भी काशी से प्रयाग आए हुए थे। मेरा अधिकांश समय उन्हीं के समीप रहने में व्यतीत होता था। अचानक उन्हें क्या सूझी कि उन्होंने मुझसे कहा—'मेरी इच्छा है कि एक चित्र पंत और रत्नाकर का साथ-साथ लिया जाए। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी की काव्यरचना के ऐसे दो प्रतिनिधि और कहां मिलेंगे। संयोग की बात है कि दोनों एकेडेमी के उत्सव में आए हुए हैं।' मैंने निवेदन किया कि दो पीढ़ियों के प्रतिनिधि कवि होने की दृष्टि से तो यह चित्र महत्त्वपूर्ण होगा, पर विशुद्ध चित्रकला की दृष्टि से इसमें एक असामंजस्य भी आ जाएगा। कहां तो दुबले-पतले मृद-मसृण पंत और कहां गोल-मटोल, सुरमा-समन्वित, दीर्घकाय रत्नाकर। बाबू साहब ने कहा—'कला की बात छोड़ो, हम ऐतिहासिक चित्र ले रहे हैं।' अंत में वही हुआ। अब भी रत्नाकर और पंत का वह सम्मिलित चित्र अनेक साहित्यकारों के पास पाया जाता है। इससे ऐतिहासिक अभिज्ञता तो हो जाती है, पर उस सम्मिलित चित्र के आंगिक असामंजस्य का परिहार नहीं होता। मेरा अपना अनुभव यह है कि यह चित्र पंत और रत्नाकर, दोनों के प्रति अन्याय करता है। दोनों को गलत परिपार्श्व में रखता है। पंत के सौंदर्यप्रेमी व्यक्तित्व के प्रति तो यह अन्याय ही नहीं, अत्याचार भी करता है। परंतु पंत की शालीनता उनकी सौंदर्यप्रियता पर विजयिनी हुई और उन्होंने यह चित्र सहर्ष खिंचवाया।

पंत की अतिशय शालीनता और संकोचशीलता जहां उनके व्यक्तित्व को एक असाधारण आकर्षण देती है, वहीं उस पर कुछ प्रतिबंध भी लगा देती है। उनके

मित्रों की संख्या बहुत सीमित रही है। कदाचित् वे नई मैत्रियां नहीं कर पाते। उनका मित्र बनने के लिए लोगों को उनके पास जाना पड़ता है, वे लोगों के पास नहीं जा पाते। मेरा अनुमान यह है कि मित्रों की कमी के कारण पंत को उचित प्रकार के समीक्षक अच्छी मात्रा में नहीं मिले हैं, जिनके कारण उनके काव्य का विवेचन कुछ एकांगी हो गया है। आरंभ में केवल शांतिप्रिय द्विवेदी उनके साथी समीक्षक थे। विचारों के आदान-प्रदान की कमी के कारण एक ओर उनके काव्य की सम्यक् समीक्षा नहीं हो पाई, और दूसरी ओर उनके निजी व्यक्तित्व के साथ संतुलित बौद्धिक भूमिका का निर्माण नहीं हो पाया। इस कमी की पूर्ति पंत को अपनी निजी साधना से ही करनी पड़ी। उनकी अंतर्मुखता जहां एक ओर उनकी रचनाओं को वैशिष्ट्य देती है, वहीं सामाजिक संपर्क की भावुस्वरता की कमी भी ला देती है। पंत छायावादी से गांधीवादी बने। उन्हें मार्क्सवाद की हवा भी लगी और अंततः वे ऐकांतिक अरविंद-दर्शन के क्षेत्र में चले गए। इन विविध विचारभूमियों का संक्रमण उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर ही किया। यदि पंत इतने 'असामाजिक' न होते तो कदाचित् उनकी रचनाओं में अधिक समरसता आ जाती। वैचारिक भूमि पर उनके मित्र उनकी अधिक सहायता न कर सके। इसे एक खेदजनक घटना ही कहा जाएगा।

सन् 1917-18 से प्रारंभ कर सन् 30 तक पंत की काव्यरचनाएं 'पल्लव' शैली की कृतियां कही जा सकती हैं, यद्यपि वे सब की सब 'पल्लव' में संचित नहीं हैं। ये सारी रचनाएं मनोरम कल्पनाओं से आपूर्ण हैं और कहीं भी भरती की सूचना नहीं देतीं। इनमें एक स्वाभाविक विकासभूमि भी मिलती है। 'ग्रंथि' और 'आंसू' रचनाओं में एक प्रेमकथा का आभास है। 'ग्रंथि' की पंक्तियां उन दिनों तरुण साहित्यकारों की जबान पर खेलती रहती थीं। पंत के पाठकों की संख्या छायावादी कवियों में सबसे अधिक रही है। उनके कुछ अन्य प्रगीत कल्पना की इकहरी छवियों से दीप्तिमान हैं। इन रचनाओं की समीक्षा करते हुए स्वर्गीय श्री अमरनाथ झा ने लिखा था कि एक अनुपम मिठास उनमें पाई जाती है। परंतु वे भावसंवलित नहीं हो पाए। इससे भिन्न जो रचनाएं आकाश को छोड़कर भूमि पर उतरी हैं, उनमें भावतत्त्व का भी उन्मेष हुआ है। इस प्रकार आकाशीय और भौमिक रचनाओं की दो कोटियां पंत के उन प्रगीतों में पाई गई थीं।

उस समय की जिस एक कविता ने साहित्यकारों को सबसे अधिक आकृष्ट किया था, वह पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता थी, जो अनेक छोटे-छोटे खंडों

में और भिन्न-भिन्न छंदों में लिखी जाकर भी एक गंभीर प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हुई थी। इस कविता में प्रयुक्त कल्पनाछवियां पंत की अन्य रचनाओं की अपेक्षा भिन्न शैली की थीं। वे केवल सौंदर्यछवियां न थीं, वरन् रौद्र और भयानक भावों की सृष्टि करने वाली गंभीर छवियां भी थीं। इस कविता को पढ़कर मुझे पंत के विशिष्ट कविरूप पर विश्वास हो गया, और मैं आसानी से पंत के संबंध में कोई विरोधी चर्चा सुनने के लिए तैयार न था। इसलिए जब निराला ने 'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया' शीर्षक कविता का दार्शनिक ऊहापोह करते हुए उस सहज रचना पर आक्षेप किया, तो मुझे यह जान पड़ा कि काव्यविवेचन में दर्शन का हमला अनेक बार खतरनाक भी हो सकता है।

सन् '33 के पश्चात् जब मैं प्रयाग से काशी चला गया, पंत से मेरा संपर्क बहुत कुछ कम हो गया। परंतु इसी समय, जब उनकी 'गुंजन' पुस्तक निकली, तब मुझे अंशतः प्रसन्नता और अंशतः चिंता भी हुई—प्रसन्नता इसलिए कि इस काव्यरचना में पंत कल्पना की दिशा से चिंतन की ओर बढ़ रहे थे, और चिंता इसलिए कि 'परिवर्तन' का सा भावोद्रेक और काव्यसंभार उसमें कम दिखाई दिया। इसी के आसपास जब मैंने उनका 'ज्योत्स्ना' नाटक पढ़ा, तो उसकी प्रतीकात्मकता मुझे बड़ी सुदंर लगी। इस नाटक में पंत ने मानवीय क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण विषय चुनकर उस पर विविध दिशाओं से सार्थक प्रकाश डाला था। यद्यपि उनके निष्कर्ष कल्पनाप्रधान और आदर्शजीवी थे, पर मुझे इससे कम प्रसन्नता न हुई कि पंत एक बड़े विषय को बहुमुखी दृष्टि से संभाल सकते हैं। 'ज्योत्स्ना' नाटक में मेरे लिए निष्कर्ष का उतना महत्त्व न था जितना उसकी रचनापद्धति का। अतएव मुझे आशा होने लगी कि समय पाकर पंत 'प्रामेथियस अनबाउंड' जैसी गंभीर नाटकीय सृष्टि भी दे सकेंगे।

'युगांत' और 'युगवाणी' में पहुंचकर पंत ने छायावादी शैली को छोड़ दिया और अधिक अनलंकृत काव्य की ओर उन्मुख हुए। यदि इस अनलंकृत काव्य में शैलीगत परिवर्तन ही नहीं, भावसत्ता में भी प्रखरता आई होती तो पंत के इस विकास में मुझे सर्वाधिक प्रसन्नता होती। परंतु जब पंत ने इन कृतियों को 'गद्य गीत' की संज्ञा देकर प्रकाशित किया, तो इस विरोधाभास के सामने मेरी बुद्धि चकराने लगी। फिर भी मैं प्रतीक्षा में पश्चात्पद नहीं हुआ। समयांतर में ही मुझे यह ज्ञात हो सका कि पंत से किस प्रकार के काव्य की आशा की जा सकती है, और किस प्रकार के काव्य की नहीं। कवि कीट्स की भांति पंत मूलतः सौंदर्यजीवी और कल्पनालोक का निर्माण करने वाले कवि हैं, यह

मुझे आभासित होने लगा। उनसे किसी विद्रोही काव्य की आशा करना ठीक नहीं, यह भी मैं धीरे-धीरे समझने लगा। इस नई अभिज्ञता से मुझे कोई गहरी निराशा नहीं हुई, क्योंकि मैं जानता था कि पंत का काव्यत्व जहां भी रहेगा, अपनी रंगत दिखाएगा ही।

इसी अवसर पर या इससे कुछ आगे-पीछे पंत का संपर्क कुछ राजनीतिक मतवादियों से हो गया जो उन्हें भांति-भांति के सजातीय-विजातीय विचारों से परिचित कराने लगे। पंत की इस समय की मनस्थिति कई प्रकार के खिंचावों से आक्रांत दिखाई देती है। परंतु जब कभी पंत इन खिंचावों का अतिक्रमण कर अपनी प्रकृत भावभूमि का प्रत्यय पाते रहे हैं, तब-तब उनकी रचनाएं असाधारण सौंदर्य से समन्वित हो गई हैं। 'भारत माता ग्रामवासिनी' कविता इसका एक अच्छा उदाहरण है।

सन् '40 के पश्चात् पंत का व्यक्तित्व उत्कट वैचारिक संघर्षों के पश्चात् जिस भूमिका पर आकर स्थिर हुआ वह मूलतः दर्शन की भूमिका ही कही जाएगी। काव्य और दर्शन के इस संघर्ष में दर्शन की विजय हुई, यह सत्य स्वीकार करना ही होगा। ऐसे बहुत कम उदाहरण साहित्य के इतिहास में प्राप्त होते हैं, जब एक श्रेष्ठ कवि काव्य और दर्शन के संघर्ष में दर्शन को विजयी होने देता है। वड्र्सवर्थ का एक उदाहरण अंगरेजी काव्य में मिलता है, जो विशिष्ट कवि होकर भी अपने परवर्ती जीवन में दर्शनशास्त्र से अभिभूत हो गया था। समीक्षकों ने कवि वड्र्सवर्थ की पराजय पर अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं। कुछ ने इस परिवर्तन को वस्तून्मुखी दृष्टि से स्वीकार कर उसे एक युग-मसीहा के रूप में उद्घोषित किया है। कुछ अन्य आलोचकों ने उसे मानवतावादी, नीतिवादी अथवा धार्मिक कहकर आंसू पोंछने की चेष्टा की है। परंतु काव्य के इतिहास लेखक यह स्वीकार करते हैं कि इन समस्त उदात्त वादों के रहते हुए भी वड्र्सवर्थ एक कवि के रूप में समान स्तर का निर्माण और निर्वाह नहीं कर पाया। युग की मतवादी दृष्टियां कवि को कहां से कहां ले जा सकती हैं, वड्र्सवर्थ इसका एक उदाहरण है। पंत के संबंध में कोई अंतिम बात अभी नहीं कही जा सकती, क्योंकि वे अब भी सक्रिय रूप से काव्यक्षेत्र में खड़े हैं?

पिछले कुछ वर्षों से जब कभी पंतजी से मेरी भेंट हुई है, मैंने उनके व्यक्तित्व को उदास और उनके स्वास्थ्य को शिथिल पाया है। अभी कुछ वर्ष पहले प्रयाग की 'परिमल' गोष्ठी में मैं उद्घाटनकर्ता बनकर गया था। अन्य अनेक

साहित्यकारों के साथ पंत भी वहां उपस्थित थे। लेखक के स्वातंत्र्य की समस्या पर विचारविमर्श हो रहा था। मुझे स्मरण है कि मैंने देश की वर्तमान स्थिति में स्वातंत्र्य की इस समस्या को एक कृत्रिम समस्या कहा था, क्योंकि लेखकों के स्वातंत्र्य पर किसी प्रकार का संकट नहीं है, न होने की संभावना है। वैसी स्थिति में इस समस्या को उपस्थित करने वाले लेखकों की मंनोभावना किस दिशा में जा रही है, यह समझना कठिन है। कभी-कभी स्वतंत्रता सीमा के बाहर भी जा सकती है। इस आशंका को प्रकट करने के पश्चात् जब मैंने अपना वक्तव्य समाप्त किया, तब पंत भी बोलने उठे और उन्होंने कवि के स्वातंत्र्य का पक्ष लेकर बड़ा सुंदर वक्तव्य दिया। मुझे उनके भाषण से बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि मैंने यह सोचा कि पंत के अवचेतन में अब भी कवि के स्वातंत्र्य की प्रेरणा बनी हुई है। फिर मैं यह सोचने लगा कि स्वातंत्र्य भी कितने प्रकार का, और बंधन भी कितने रूपों के हुआ करते हैं, केवल राजनीतिक बंधन ही सब कुछ नहीं हैं। विचारों और मतवादों के बंधन भी कम नृशंस नहीं होते। इस युग के अनेक कवियों पर ये वैचारिक बंधन बोझ बनकर छाए हुए हैं। पंत ने उस दिन के वक्तव्य में प्रत्येक प्रकार के बंधन से कवि और लेखक को मुक्त रखने की बात कही थी। शायद उनकी मूल चेतना में अन्य बंधनों के साथ इन वैचारिक बंधनों से त्राण पाने की बलशाली इच्छा विद्यमान थी। तो क्या पंत अब भी काव्य और दर्शन के संघर्ष को सुलझाने में लगे हुए हैं? क्या अब भी कवि और काव्य की स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं? यदि ऐसा है तो इससे अधिक प्रसन्नता की बात दूसरी नहीं हो सकती।

पिछले कुछ वर्षों से पंत आकाशवाणी केंद्र में हिंदी कार्यक्रमों के संचालक रहे हैं। इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने हिंदी काव्यसंगीत के स्तर का बड़ी मात्रा में उन्नयन किया है, यद्यपि बहुत-से अच्छे कवि-गायक छूट भी गए हैं। इस अवधि में पंत की अनेक काव्यरचनाएं और रेडियो नाटक प्रसार के उद्देश्य से प्रस्तुत किए गए। उनमें कुछ तो पंत के काव्यस्तर के अनुरूप हैं, पर बहुत-सा भरती का काम उन्हें इस बीच करना पड़ा है, सरकारी संस्थाओं में रहकर ऐसा करना ही पड़ता है। यद्यपि पंत के सहयोग से हिंदी कार्यक्रमों का सामूहिक स्वरूप सुधरा है, पर इससे उनकी शक्ति और समय का अपव्यय भी हुआ है। पिछले कुछ समय से उन्होंने यह कार्य छोड़ दिया है, यह प्रसन्नता की बात है। इससे पंत को प्रेरणारहित रचनाएं प्रस्तुत करने से मुक्ति मिली है, और अब वे अपने मन का काम कर सकेंगे। मेरा अपना अनुमान यह है कि पंत अरविंद आश्रम के औपचारिक विधि-विधान से अलग ही रहें तो

अधिक अच्छा हो। इसका यह आशय नहीं कि मैं आश्रम के संपर्क को उनके लिए अनुपयोगी समझता हूं। आशय यह है कि वे किसी बंधन में रहकर काव्यकृतियों का प्रणयन न करें तो यह हम सब लोगों के लिए अभीप्सित वस्तु होगी। पंत के अरविंद आश्रम के संपर्क से कुछ लाभ भी हुए हैं। उनकी नई रचनाओं में एक नए आत्मविश्वास की सृष्टि हुई है। परंतु कोई भी ऐकांतिक तत्त्वदर्शन जितनी मात्रा में व्यक्ति को लाभ पहुंचा सकता है, काव्य को नहीं। एक विशिष्ट विचार-सरणी को पकड़ लेने से रचना में सांप्रदायिकता और वैचारिक अतिवाद आने की संभावना रहती है, काव्य एक विशेष प्रणाली में प्रवाहित होने लगता है, जीवन की बहुमुखी अभिव्यक्ति बाधित हो जाती है। हमारा विश्वास है कि पंत अपने इस प्रौढ़ वय में लोकजीवन की अनेकमुखी प्रेरणाओं को ग्रहण कर अधिक उदात्त और भावप्रवण काव्यसृष्टि कर सकते हैं।

अपने नवीन काव्यसंग्रह 'चिदंबरा' की भूमिका में पंत ने नई कविता और नए कवियों को कुछ सुझाव दिए हैं। उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'आज की नयी कविता अपनी प्रयोगवादी सीमाओं का अतिक्रम करने के प्रयत्न में, नवीन मानव-मूल्यों की खोज में, सामाजिक चेतना की वास्तविकता के घनत्व से हीन एक भयानक शून्य में भटक गई है, और उपचेतन व्यक्तित्व गर्त में फंसकर ऐसे अतिवैयक्तिक छायाभासों तथा व्यक्तिगत रुचियों के भावना मूढ़ भेदोपभेदों, अतिवास्तविक प्रतीकों तथा शशक शृंग बिम्बों को जन्म दे रही है जिनका मानवता तथा लोक मांगल्य से दूर का भी संबंध नहीं,—मांगल्य, जो बहुमुखी मानव-सत्य की एकमात्र कसौटी है। इस प्रकार वह एक कृत्रिम भाविक अलंकरण मात्र बनती जा रही है?'[2]

इससे सपष्ट है कि पंत का कवि-व्यक्तित्व अब भी अतिशय सजग और सतेज है तथा वह श्रेष्ठ काव्य की सृष्टि के लिए पूरी तरह सचेत और सक्षम भी है। उनकी एकषष्ठी के इस अवसर पर उनके सम्मानस्तवक में अपना यह पुष्पोपहार समर्पित करते हुए हम उनसे यही अभ्यर्थना करेंगे कि वे दर्शन और कविता के दृश्यमान द्वंद्व को अपने व्यक्तित्व में उपशमित कर लें और दोनों की पृथक् सरणियों को मिलाकर एक हो जाने दें, जिससे उनकी कविता किसी प्रकार के हीनताभाव का अनुभव न कर अपने विजयोल्लास में [illegible] खिल उठे।

NANDARAM DHEKIAL PHOOKAN COLLEGE LIBRARY
Acc. No.....
Date.....

अध्याय चार

पंत का काव्य : एक मूल्यांकन

नवीन हिंदी कविता में सबसे श्रेष्ठ सृष्टिप्रतिभा लेकर सुमित्रानंदन पंत का विकास हुआ था। हिंदी के क्षेत्र में पंत की कल्पना की शक्ति अजेय, उसका नवनवोन्मेष अप्रतिम है। कल्पना ही पंत की कविता की विशेषता, उसके आकर्षण का रहस्य है। यही उनकी विविध बहुमुखी रचनाओं की आधार, उनमें रमणीयता का विस्तार करती है। 'उपमा कालिदासस्य' में कल्पना की ही कीर्ति प्रशस्ति हुई है, यह अर्थ समझकर, पंत के काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि कल्पना अलंकरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, यह कहा जाए तो प्राचीन समीक्षा की शब्दावली का निर्वाह भी हो जाएगा और पंत की विकासदिशा भी इंगित हो जाएगी। कल्पना केवल रूपछवियों में ही नहीं, काव्यवस्तु और भावना में भी। यह दूसरी कल्पना पंत की प्रारंभिक रचनाओं में कोरी भावप्रवणता का आतिशय्य कर देने वाली, अतः काव्यालोचना में विशेष प्रशंसाज्ञापिका नहीं, परंतु यहां पंत का विकास दिखाने में उसका उल्लेख करना ही पड़ेगा। कल्पना ही पंत की कविता का मेरुदंड, उनकी काव्यसृष्टि का मापदंड रही है। कोरी कल्पना की बाल्यसुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यंत तल्लीन और गहन कल्पना अनुभूतियों के चित्रण में पंत का विकासक्रम देखा जा सकता है।

प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म मानसिक विवृत्ति में पंत की कल्पना समर्थ हुई है और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान भी लेती चली है। इसे ही प्रचलित शब्दावली में छायावाद कहा जाता है। प्रेम के संयोगपक्ष को भी और वियोगपक्ष को भी समान सौकर्य से प्रकट करने में उनकी कल्पना कुंठित नहीं होती, कहीं हल्की मोदमय, कहीं मधुर रसमय भावाभिव्यक्ति करने में वह योग देती और कहीं गूढ़ रहस्यमयी सृष्टि भी निर्मित करती है। कल्पना के प्रकर्ष में जड़ व्यक्तित्व छूट जाता है, और कवि स्वच्छंद होकर व्यापक, निर्लेप सृष्टि करने में प्रवृत्त होता है। एक ओर जहां यह लाभ है, वहां दूसरी ओर यह

हानि भी साथ ही लगी है कि कल्पना का अतिरेक जीवन का संपर्क छोड़कर एकांतिक हो जाए। किंतु पंत की कल्पना वैसी प्रायः कम ही है। वह अनेक बार दिव्य ज्योति दिखाती, यदा-कदा विद्युत चकाचौंध उत्पन्न करती, पर गड्ढे में प्रायः कभी नहीं गिराती। कल्पना की इस 'औलंपिक' प्रतियोगिता में पंत नें अपने लिए प्रेम और सौंदर्य के 'हीट्स' चुन लिए हैं, और शृंगारवर्णन का उनका 'रेस' विशेष चमत्कारपूर्ण हुआ है। पंत की यही रुचिदिशा है। उनकी रुचि कोमल अथच मार्जित है। उसे हम नागरिकरुचि भी कह सकते हैं, और इस विशेषण से उनके वर्णित विषय पर ही नहीं, उनके शब्दसंगीत, छंदचयन और भाषा-शैली पर भी प्रकाश पड़ जाता है। उनकी कल्पना के साथ उनकी यह रुचि मिलकर उनकी कविता को रमणीय अथच आकर्षक वेशभूषा से सज्जित करती है—यह साजसज्जा आधुनिक हिंदी में आतिशय विरल है। पंत की इस रुचि से हिंदी खड़ी बोली को ईप्सित फल प्राप्त हुए हैं—सरस, सार्थक शब्दसृष्टि, सुगेय छंद और सुंदर प्रशस्त भाषा। शब्दसाधना में पंत ने संस्कृत की सहायता ली है यद्यपि शब्द प्रतिमाएं अंगरेजी कलाकौशल से खड़ी की गई हैं। भाषा, छंद और शब्दालंकरण का महत्त्व समीक्षकगण यह कहकर अपहरण कर लेते हैं कि उनसे भावतन्मयता को क्षति पहुंचती है, और इस प्रकार बहिरंग को सजाकर अंतरंग रुग्ण ही बना रहने दिया जाता है, पर ऐसे आरोपों पर हमें ध्यान नहीं देना चाहिए। काव्य में बहिरंग और अंतरंग का ऐसा कहीं भेद नहीं है। सार्थक, सुप्रयुक्त शब्द, यथायोग्य छंद—ये सब भावों के अभिन्न अंग हैं। बाह्य और अंतरंग यहां कुछ नहीं। भावों को स्वरूप देने वाले शब्द ही काव्य में सब कुछ हैं, अन्यथा भावों की सत्ता ही कहां रहती? 'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द' को काव्य कहते हुए संस्कृत आचार्य ने इसी तत्त्व को प्रकट किया था जिसे हम आज बहिरंग और अंतरंग के भ्रम में भुलाना चाहते हैं। पंत ने अपने समय की खड़ी बोली को संस्कृत की शब्दयष्टि देकर दृढ़ किया, हिंदी के अनुरूप अनेक प्रयोग आविष्कृत किए और भाषा में एक नई ही छटा छा दी। उन्होंने खड़ी बोली को भावाभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की। यहाँ इस उल्लेख का आशय यह है कि समीक्षकगण भाषा और भावों का चाहे जो संबंध स्थापित करें, परंतु पंत ने अपनी खड़ी बोली को स्वस्थ स्वरूप देकर उसे भावप्रसूति के अधिक उपयुक्त बनाया और उनके इस प्रयास में भाषा और भाव अलग-अलग नहीं—बाह्य और अंतरंग नहीं—वरन् काव्य का सर्वांगीण विकास करते देख पड़ते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि खड़ी बोली को उस समय अपने अवयव संघटक की परम आवश्यकता थी, अन्यथा स्वयं हिंदी कविता उसी पुरानी दुर्बल दशा में पडी रहती। भाव और भाषा का यह अभिन्न संबंध

समझने में पंत को प्रारंभ से ही द्विविधा नहीं थी, यह भी समय को देखते हुए, उनकी प्रतिभा का ही प्रमाण है।

इस प्रसंगप्राप्त स्थल में हम एक आवश्यक उल्लेख कर देना चाहते हैं, तत्पश्चात् पंत की कृतियों की थोड़ी चर्चा करने में प्रवृत्त होंगे। यह उल्लेख स्पष्ट शब्दों में करने में भी कोई हानि नहीं है। पंत पर यह आक्षेप सबसे अधिक किया गया है—यह भी उनकी ओर लोकदृष्टि के आकर्षण की ही सूचना है—कि वे न केवल बंगला के शब्दप्रयोगों को हिंदी में अपनाते हैं, वे तो अंगरेजी के कवियों और बंगला के रवींद्रनाथ आदि से भावापहरण भी करते हैं। इस प्रकार के आक्षेपों के संबंध में हम केवल दो बातें कह सकते हैं। एक तो यह कि यदि हिंदी में लाकर भिन्न भाषा के प्रयोगों को हिंदी का बना दिया गया है—इस 'हिंदीकरण' का अर्थ हिंदी के जानकार खूब समझते हैं, जिससे हिंदी की अभिव्यक्तिशक्ति बढ़ने के लाभ के अतिरिक्त कोई हानि नहीं हुई—तो उसे 'अपहरण' न कह कर 'अलंकरण' कहना चाहिए, 'मनि मानिक मुकता छवि जैसी, अहि गिरि गज सिर सोहन तैसी। नृप किरीट तरुनी तनु पाई, लहहिं सकल सोभा अधिकाई।'[3] दूसरी बात यह कि हमें उन अपहरणों के भीतर से कवि का विकास देखना चाहिए। उनको यह जान लेना चाहिए कि कवि केवल अनुवादक के रूप में बना रहता है अथवा वह कुछ आगे भी बढ़ता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'उपजहिं अनत अनत छवि लहहीं' की अपनी सूक्ति को अपने काव्य में पूरी मात्रा में चरितार्थ कर दिखाया है। हम देखते हैं कि पंत के अपहरणों में भी उनकी प्रतिभा और रुचि का सम्यक् प्रदर्शन है। तथापि यदि कहा जाए कि पंत ने रवींद्रनाथ से बहुत कुछ प्राप्त किया है, तो क्या रवि बाबू ने दूसरे कवियों से कुछ भी प्राप्त नहीं किया? केवल दो एक उदाहरण देख लेना चाहिए :

"Spirit of Beauty that dost consecrate
With thy own hues all thou dost shine upon
Of human thought or form where art thou gone?"[4]
--*Sheley*

"Spirit of Beauty, how could you, whose radiance
overbrims the sky,
Stand hidden behind a candle's tiny flame?
How could a few vain words from a book rise like a
mist and veil

Her whose voice has hushed the heart of earth into
ineffable clam?"[5]

--Rabindranath

"Suspended in the solitaraty dome
Of some mysterious and deserted fane
I wait thy breath, Great praeat, that my strain
May modulate with murmurs of the air,
And Motions of the forest and the sea,
And voice of living beings and woven hymns
Of night and day, and the deep heart of man."[6]

--Sheley

"Let thy love play upon my voice and rest on my silence
Let it pass through my heart into all my movements.
Let me carry thy love in my life as a harp does its music,
And give it back to thee at last with my life"[7]

--Rabindranath

वंशी ही से करदे मेरे
सरस प्राण औ' सरस वचन,
जैसा-जैसा मुझको छेडें,
बोलूं अधिक मधुर, मोहन,
जो अकर्ण अहि को भी सहसा
करदे मंत्र मुग्ध नत फन
रोम-रोम छिद्रों से मां!
फूटे तेरा राग गहन

—पंत

'उच्छ्वास', 'आंसू', 'ग्रंथि' और 'परिवर्तन' ये पंत की वियोगवर्णन की लंबी कविताएं हैं। 'उच्छ्वास' और 'आंसू' दोनों एक में मिलाकर एक ही कविता बना दी जा सकती है। एक की भावना एक में ही संकलित न होकर दूसरों में भी प्रसार पा रही है। संकलन की दृष्टि से यह बाधा लग गई है। परंतु इस बाधा से भी अधिक 'उच्छ्वास' और 'आंसू' की अस्पष्टता खटकती है। यह अस्पष्टता रहस्यवाद की किसी ऊंची आध्यात्मिक उड़ान के कारण नहीं है—यह हम स्पष्टतः कह सकते हैं। पंत की कल्पना जहां कहीं आध्यात्मिक भावना में परिणत होती है, वे छाया रहस्यात्मक स्थल कहीं दूरूह नहीं हुए हैं,

परंतु 'उच्छ्वास' और 'आंसू' मानवीय वियोग का वर्णन करते हुए जान पड़ते, किन्तु क्लिष्टता के कारण संदेह उत्पन्न करते हैं। 'उच्छ्वास' में जहां पंत प्राकृतिक शोभावर्णन करके 'इस तरह मेरे चितेरे-हृदय की, बाह्य प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी' कहते हैं वहां यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि हृदय के ही किसी प्रसंग का वर्णन है, जिस प्रसंग में 'बाह्य प्रकृति' को 'चित्र' मात्र बनाकर संतोष करना पड़ा है। पंत की रहस्यात्मक कविताओं में प्रकृति को कहीं बाह्य प्रकृति कहलाने का कुअवसर प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए यह दूसरा अनुमान भी दृढ़ होता है। 'उच्छ्वास में पंत की कोई गहन अनुभूति नहीं है। फिर उसमें क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में 'उच्छ्वास की बालिका के प्रति' जो 'स्मृति' पंत ने लिखी है वह भी विशेष सहायता नहीं पहुंचाती। बालिका के प्रति वियोग की बात तो 'उच्छ्वास' और 'आंसू' दोनों से ज्ञात होती है और यह भी ज्ञात होता है कि 'संदेह' के कारण बालिका का परिणयसंबंध उसके उस मित्र से न हो पाया जो 'मंद-हास-सा उसके मृदु अधरों पर मंडराया' और 'उसकी सुखद सुरभि से प्रतिदिन समीप खिंच आया' था। इस परिणयसंबंध के चरितार्थ न होने, बीच में ही टूट जाने के कारण 'उच्छ्वास' 'आंसू' की सृष्टि हुई दीख पड़ती है। पंत इसे 'कल्पनाओं की कल कल्पलता' कहकर अपनाते हैं, इसलिए 'बालिका' का शारीरिक अस्तित्व कल्पना में विलीन होता ज़ान पड़ता है पर साथ ही 'अदेह-संदेह' के कारण 'जुड़े स्वभाव छुड़ाने' आदि की घटनाएं फिर बीच में विक्षेप डालती हैं। यह अस्पष्टता कविता के लिए काम्य नहीं हुई। निष्कर्ष तो केवल दो ही निकल सकते हैं। कवि 'बालिकावत' अपने बाल्यजीवन के वियोग में दुःख प्रकाश कर रहा अथवा वह अपनी किसी बाल सहचरी का विरह वर्णन कर रहा है। किंतु दोनों निष्कर्षों में द्विविधा लगी हुई है। पहले निष्कर्ष के अनुसार अपनी ही 'बालिका मूर्ति' के प्रति कवि का वियोग आश्चर्यजनक प्रतीत होगा और दूसरा अर्थ लेने पर कवि की इस वियोग घटना में किसी आध्यात्मिकवाद की अपेक्षा निराश रोदन की ही प्रमुखता सिद्ध होगी। इससे कहीं अधिक सरस, पंत की 'बालापन' कविता 'उच्छ्वास', 'आंसू' आदि से दो वर्ष पहले लिखी जा चुकी थी—

'अहो कल्पनामय, फिर रच दो वह मेरा निर्भय अज्ञान,
मेरे अधरों पर वह मा के दूध से धुली मृदु मुस्कान!
मेरा चिन्ता रहित, अनलसित, वारिबिम्ब सा विमल हृदय
इंद्रचाप सा वह बचपन के मृदुल अनुभवों का समुदय';[9] इत्यादि।

इस 'बालापन' कविता के सामने 'उच्छ्वास' का 'बालिकाविरह' आदि हमें प्रभावित नहीं करते। यदि दूसरे निष्कर्ष के अनुसार देखें तो 'उच्छ्वास' की बालिका 'यौवनागम के द्वार पर खड़ी अपने प्रिय के परिणय पाश में बंधने से वंचित, अवश्य ही करुण है, और उसके निराश प्रेमी के 'आंसू' भी अवसरजन्य ही हैं,' परंतु यह सब वर्णन संभवतः पंत के उस समय के संकोच के कारण स्पष्टता नहीं प्राप्त कर सका। यदि प्राप्त भी करता तो कविता किसी उच्च धरातल पर न पहुंच पाती क्योंकि 'उच्छ्वास' और 'आंसू' में पंत की कल्पना कहीं भी गंभीर स्पर्श नहीं करती, व्यक्तिगत आकांक्षा और आवेग तक सीमित रहती है।

'उच्छ्वास' और 'आंसू' के पढ़ने पर एक तीसरी धारणा यह भी उत्पन्न होती है कि इनमें कवि 'प्रेम' का मुक्त निर्बंध रूप दिखा रहा है। यह धारणा इन पंक्तियों से और भी दृढ होती है :

> देखता हूं, जब उपवन पियालों में फूलों के
> प्रिय! भर-भर अपना यौवन पिलाता है मधुकर को;
> नवोढ़ा-बाल लहर अचानक उपकूलों के
> प्रसूनों के ढिंग रुक कर सरकती है सत्वर;
> अकेली आकुलता सी प्राण! कहीं तब करती मृदु आघात
> सिहर उठता कृश गात, ठहर जाते हैं पग अज्ञात![10]

प्रकृति के इस निर्मल मिलन को ही 'सार' समझकर, कवि 'उच्छ्वास' की 'बालिका' के प्रसंग में उसका अभाव देखकर कहता है :

> है सभी तो और दुर्बलता यही, समझता कोई—नहीं क्या सार है।
> निरपराधों के लिए भी तो अहा ! हो गया संसार कारागार है!![11]

अवश्य ही 'उच्छ्वास' की बालिका ने कवि के हृदय में प्रेम के रहस्य के संबंध में जिज्ञासा उत्पन्न कर दी है और वह जिज्ञासा 'निरपराधों के लिए भी तो अहा! हो गया संसार कारागार है' कह कर ही समाप्त नहीं हो जाती। उसका समाधान 'मुक्त प्रकृति के निर्बंध विहार' में ही नहीं होता, वह और आगे बढ़ती है।

'ग्रन्थि' पंत की विशेष मार्मिक विरहकविता है। यह 'उच्छ्वास' और 'आंसू'

की भांति द्विविधा से नहीं, अत्यंत स्पष्ट रीति से मानवीय विरह का शोक-संताप प्रकट करती और विशेष करुण वातावरण उपस्थित करती है। 'उच्छ्वास' की उपर्युक्त प्रेमसंबंधी जिज्ञासा ही मानो 'ग्रन्थि' बन गई है पर 'ग्रन्थि' का उसमें निवारण नहीं है। कवि यहां वियोगव्यथा में इतना तल्लीन हो गया है कि उसमें एक विलक्षण जड़ता आ गई है जो पंत की अन्य रचनाओं में बहुत कम दिखलाई देती है। 'ग्रन्थि' के वियोगवर्णन में विषाद और तज्जन्य मानसिक दौर्बल्य का भी आभास छूट नहीं पाया।

'परिवर्तन' में पहुंचकर पंत की कल्पना सचेत होकर अपनी शक्ति का परिचय देती है। 'उच्छ्वास', 'आंसू', 'ग्रन्थि' आदि के वैयक्तिक अनुभवों के उपरांत 'परिवर्तन' में कवि की निर्लेप कल्पना प्रस्फुटित हो उठी है और यहां वह जीवन के संबंध में निराशामूलक किंतु तटस्थ विचार प्रकट करती है। यदि यह कथन ठीक है कि कविता शरीर की रीढ़दर्शन (outlook of life) है तो 'परिवर्तन' में कविता को यह रीढ़—दृढ़ रीढ़—मिल गई है। 'परिवर्तन' को हम दार्शनिक काव्य कह सकते हैं और पंत की सुंदरतम रचनाओं में रख सकते हैं। यहां पहुंचकर 'उच्छ्वास' का 'निरपराधों के लिए भी तो अहा! हो गया संसार कारागार है' की भांति का उपालंभ दूर हो जाता है और वस्तुस्थिति को समझकर कवि उसे स्वीकार करता है। 'परिवर्तन' में कवि का निराशावाद ही प्रमुख रीति से झलकता है। फिर भी 'स्थिति' को देखने की और वास्तविकता को पहचानने की शक्ति का उसमें आह्वान है। निराशामूलक होती हुई भी इस रचना में एक औदात्य और दर्शन की तटस्थता है। अवश्यंभावी 'परिवर्तन' के चिर चक्र में पड़ा हुआ क्षुद्र मनुष्य अपने सुख-दुःख पर क्या आस्था करे? 'परिवर्तन' में मानवीय सुख-दुख का यही निराकरण, जीवन का यही आश्वासन हमें प्राप्त होता है। 'साधना ही जीवन का सार' 'परिवर्तन' की विधायक पंक्ति कही जा सकती है।

'पल्लव' में वियोगपक्ष प्रमुख होने के कारण करुण निराशा की एक अश्रुपूर्ण झलक ही मूर्तिमती होती है। उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त 'छाया', 'स्वप्न', 'नक्षत्र', 'बालापन' आदि का स्वर-तार करुणध्वनि निक्षेप करता है, विविध वर्णनों और जिज्ञासाओं में एक निराशा ही फैली मिलती है। 'गुंजन' में, इसके विपरीत, कवि अधिक आस्तिक बनने की संभावना प्रकट करता है। 1931-32 की प्रायः सभी रचनाएं संयोगपक्ष की हैं, जिसमें पंत की कल्पना अपना चमत्कार दिखा रही है। 'भावी पत्नी के प्रति', 'मधुवन' आदि लंबी रचनाओं से भी अधिक

छोटे-छोटे गीतों में वह प्रदर्शित हुई है, जैसे 'लाई हूं फूलों का हार, लोगी मोल लोगी मोल?' 'मैं पलकन पग चूमूं पिया के' आदि। हिंदी के शृंगारी कवि विरहवर्णन के कारण अधिक लांछित नहीं किए गए पर जब वे संयोगवर्णन करने में सन्नद्ध हुए तब उनमें से अधिकांश ने कल्पना को ताख पर रखकर अत्यंत स्थूल फोटोग्राफ खींचना आरंभ किया। विरहवर्णन करने में उन कवियों ने जहां कल्पना के आकाश-पाताल एक कर ऊहा की विपथगति दिखा दी, वहां संयोगशृंगार के प्रसंग में संभोग की ही कथा कहने लगे। एक तरफ कल्पना का इंद्रजाल और दूसरी तरफ कल्पना छूमंतर। यह विशृंखलता शृंगारी कवियों के विकास में घातक सिद्ध हुई। पंत भी इस युग के शृंगारी कवि हैं, इनके विकास में भी कल्पना ही प्रमुख बनकर उपस्थित हुई है। पंत वियोगवर्णन में कल्पना का पल्ला भावातिरेक के समय कहीं-कहीं छोड़ भी देते हैं, पर संयोगवर्णन में वे प्रायः कभी ऐसा नहीं करते। मध्यकाल के शृंगारी कवियों के विकास से पंत के विकास में यही मौलिक अंतर है। उनका संयोगपक्ष सर्वत्र कल्पनाप्रसूत होने के कारण अधिक संयमित शुद्ध और अनुभूतिप्रद हुआ है। पंत की इन आस्तिक रचनाओं की मधुरिमा विकास पाकर स्थान-स्थान पर व्यापक आध्यात्मिक भावजगत तक पहुंच गई है। वियोग की कल्पना-अनुभूति जिस प्रकार 'परिवर्तन' में, उसी प्रकार संयोग की कल्पना-अनुभूति अनेक लघु-दीर्घ रचनाओं में व्यापक सौंदर्य की सृष्टि करती है :

आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इंदीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरंद समान,
तुम्हारे शयन शिथिल
सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालस, प्राण।[12]

आज वन में पिक, पिक में गान, विटप में कलि कलि, में सुविकास,
कुसुम में रज, रज में मधु, प्राण ! सलिल में लहर, लहर में लास![13]

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास, स्वर्ण सुख, श्री, सौरभ का सार ,
मनोभावों का मधुर विलास विश्व सुखमा ही का संसार;
दृगों में छा जाता सोल्लास व्योम-बाला का शरदाकाश;
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान, प्रिये, प्राणों की प्राण![14]

इस प्रकार की अनुभूतियां पंत की सौंदर्यचेतना में विशेष रूप से सहायक हुई हैं। यदि 'परिवर्तन' पंत की निराश अनुभूति का निष्कर्ष है तो उनकी संयोगभावना भी 'अप्सरी', 'अनंग' आदि रचनाओं में परिणति प्राप्त करती है। 'अप्सरी' और 'अनंग' दोनों ही कृतियां सौंदर्य की चेतना का प्रकाश करती हैं। जिस प्रकार वियोग के 'इंतहाए नशा' में होश आने के बाद 'परिवर्तन' लिखा गया उसी प्रकार संयोग का शुद्ध स्वरूपदर्शन करने के उपरांत शाश्वत सौंदर्य की प्रतिमूर्ति देखने, उसका रहस्य जानने की उत्कंठा भी प्रादुर्भूत हुई। यदि 'मधुवन', 'भावी पत्नी के प्रति' आदि में सौंदर्य का अनुभूति पक्ष है, तो 'अप्सरी', 'अनंग', 'प्रथम रश्मि' आदि में उसी का कल्पनाप्रधान पक्ष है। अवश्य ही पंत को इस संयोगवर्णन में पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त हुई है।

'पल्लव' काल की प्रगीतसृष्टियों को पार करते हुए हम पंत के दूसरे काव्यसंग्रह 'गुंजन' पर पहुंचते हैं। कुछ समीक्षकों ने 'गुंजन' की रचनाओं को 'पल्लव' काल में अंतर्भुक्त करने का प्रयत्न किया है तथा कुछ अन्य समीक्षकों ने 'गुंजन' को संक्रांतिकालीन रचना कहा है, जिसमें एक ओर 'पल्लव' काल के संस्कार और दूसरी ओर पंत के द्वितीय काव्यविकास 'युगवाणी काल' के प्रभाव मिले-जुले दिखाई देते हैं। यद्यपि इन दोनों वक्तव्यों में आंशिक सत्य ढूंढ़ा और पाया जा सकता है, परंतु मेरी दृष्टि में 'गुंजन' (जिसमें सन् 1930 के पश्चात् की रचनाएं संकलित हैं) एक नई काव्यसरणि का विन्यास करता दिखाई देता है, जो क्रमशः पुष्ट होकर पंत के 'युगवाणी काल' के काव्य में परिणत हो जाता है। एक वाक्य में इस द्वितीय चरण को, जिसका आरंभ 'गुंजन' से होता है, पंत काव्य का इतिवृत्तात्मक, गद्यात्मक, उपदेशात्मक तथा चमत्कारप्रधान काव्यकाल कहा जा सकता है।

'गुंजन' की एक प्रतिनिधि कविता की आठ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख![15]

'सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण,
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि में ओझल हो घन![15]

इन पंक्तियों को पढ़ते ही 'पल्लव' के पाठकों को एक झटका लगता है और वे आश्चर्यान्वित हो यह जानना चाहते हैं कि इन पंक्तियों में तथा 'गुंजन' की अनेकानेक ऐसी ही रचनाओं में काव्यत्व कितना है और कहां है। उद्धृत पंक्तियों में प्रथम दो इतिवृत्तात्मक इसलिए हैं कि वे केवल इतना कहती हैं कि 'मैं चिर सुख नहीं चाहता, मैं चिर दुःख नहीं चाहता।' यह केवल एक विचार का गद्यात्मक रूपांतरण मात्र है जो विशुद्ध अभिधा द्वारा व्यक्त किया गया है। इसमें किसी प्रकार की व्यंजना नहीं है। आगे की दो पंक्तियों में 'खेल मिचौनी' का एक लघु रूपक अवश्य है। सुख-दुख परस्पर आंखमिचौनी खेलें और इस खेल में जीवन अपना मुख खोले। यहां सुख दुःख जैसी निराकार वस्तुओं का 'आंखमिचौनी खेलना' और पुनः जीवन जैसी भाववाचक संज्ञा का 'मुख खोलना'—दोनों ही प्रयोग रूपसृष्टि में अक्षम हैं। पांचवीं और छठी पंक्ति में सुख-दुख के मधुर मिलन से जीवन के परिपूर्ण होने की बात कही गई है। 'सुख-दुख का मधुर मिलन' अनुभूतिक्षेत्र की वस्तु नहीं है—एक दार्शनिक कल्पना है। अतएव इन पंक्तियों में अनुभूतिप्रवणता का अभाव है। केवल ऐसा दार्शनिक तथ्य उपस्थित किया गया है, जो अलंकारविहीन होने के कारण और भी अधिक रूक्ष है। केवल अंतिम दो पंक्तियों में एक रूपचित्र आया है और वह रूपचित्र साकार भी है। घनों (दुख) में शशि (सुख) का ओझल होना और शशि से घन का ओझल होना काव्यात्मक पंक्तियां अवश्य हैं और रूपविशिष्ट भी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्धृत आठ पंक्तियों में से केवल दो पंक्तियों में काव्यात्मक अनुभूति को जगाने की वास्तविक क्षमता है। शेष पंक्तियां वस्तुनिर्देश मात्र करती हैं, अतः इतिवृत्तात्मक हैं।

'गुंजन' की प्रायः 46-47 कविताओं में से आधी कविताएं इसी काव्यस्तर पर लिखी गई हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि कवि का विचारपक्ष उसके काव्य पर न केवल हावी होने लगा है, वरन् उसे ग्रस्त भी करने लगा है। 'पल्लव' में ऐसे उदाहरण ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेंगे।

'पल्लव' कालीन स्वच्छंदतावादी संस्कारों से युक्त 'भावी पत्नी के प्रति', 'कब से विलोकती तुमको', 'मुस्कुरा दी थी क्या तुम प्राण?', 'आज रहने दो गृह-काज', 'आज नव मधु की प्रात के', 'रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम' आदि प्रायः एक दर्जन ऐसी रचनाएं भी हैं, जो 'गुंजन' की अपेक्षा 'पल्लव' काव्यसंग्रह के अधिक समीप हैं। जैसे :

'तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल-श्यामल अकूल आकाश
गूढ़, नीरव, गंभीर प्रसार
न गहने को तृण का आधार—
बसाएगा कैसे संसार !
प्राण ! इनमें अपना संसार !
न इनका ओर-छोर रे पार
खो गया वह नव पथिक अजान !'[17]

एक उद्धरण ही पर्याप्त होगा। यहां प्रेमिका या प्रेयसी की आंखों की कल्पना स्वच्छ नीले आकाश से की गई है। यह आकाश सजल, श्यामल और अकूल है। यह गूढ़, नीरव और गंभीर भी है। नेत्रों से आकाश की तुलना तो पंत पहले भी कर चुके थे, परंतु यहां उसके विशेषण ध्यान देने योग्य हैं। नेत्र केवल स्वच्छ और नील नहीं हैं, वे सजल और अकूल भी हैं। आकाश भी इन्हीं दो गुणों से संयुक्त है। 'सजल' से आशय शैत्य और तरलता से है। 'अकूल' से आशय रहस्यमयता और विस्तार से है। इतना ही नहीं, पंत और आगे जाते हैं और नेत्र तथा आकांश को गूढ़, नीरव और गंभीर भी कहते हैं। 'गूढ़' में आंशिक रहस्यमयता और आशय की अस्पष्टता (जो प्रेयसी के व्यक्तित्व की विशेषता है) व्यंजित हुई है। 'नीरव' से आंखों के प्रशांत और निश्चल होने की सूचना है। पुनः 'गंभीर' शब्द से नारी की चिंतनशील और अंशतः नैतिक दृष्टि का संकेत दिया गया है। जिस प्रकार आकाश में अवलंब लेने या पकड़ने के लिए कुछ नहीं होता, उसी प्रकार आंखों में कोई इंगित नहीं है। ऐसी निस्संग आंखों में प्रेमी अपना संसार कैसे बसाए। यहां तो तिनके का भी सहारा नहीं है। अतः इन आंखों को देखकर पथिक (प्रेमी) विस्मयविभोर हो जाता है।

यहां कवि कीट्स की 'ला बेली डेम सैंस परसी' शीर्षक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट कविता की याद आती है जिससे पंत की इन पंक्तियों में साम्य है; दोनों कवियों ने नारी के सुस्थिर और निष्कंप स्वरूप का चित्रण किया है, जिसमें आंशिक कठोरता भी मिली हुई है।

इन तथा 'गुंजन' की ऐसी ही अन्य कतिपय रचनाओं को हमने 'पल्लव'-काव्य के अधिक समीप कहा है। समीपता से मेरा आशय शैली, भाषाप्रयोग, रूपचित्रण

आदि की समानता से है। परंतु वस्तुवर्णन के क्षेत्र में कुछ न कुछ अंतर भी यहां दिखाई देता है। ये रचनाएं 'पल्लव' की अपेक्षा अधिक गहन आशयों की अभिव्यक्ति करती हैं।

कुछ आत्मपरिचयात्मक और आत्मनिवेदनात्मक रचनाएं भी 'गुंजन' में प्राप्त होती हैं। जैसे—'विजन वन के औ विहग-कुमार', 'चींटियों की-सी काली पांति', 'तेरा कैसा गान' तथा 'नीरव-तार हृदय में' आदि जिनमें रूपात्मक या वस्तुमूलक चित्रण की अपेक्षा वैयक्तिक पक्ष (Subjectivity) की प्रमुखता हो गई है। यह 'गुंजन' की दूसरी काव्यप्रवृत्ति है, जो कदाचित् 'पल्लव' स्तर से निम्नतर कही जाएगी।

यों तो 'गुंजन' की विचारप्रधान कविताएं भी विशुद्ध काव्यस्तर पर न आ सकने के कारण वैयक्तिकता (Subjectivity) की ही सूचना देती हैं। परंतु यहां हम उन्हें छोड़कर उन अन्य कविताओं में से एक उद्धरण देना चाहते हैं जिसमें भावात्मक वैयक्तिकता प्रमुख है :

'दूब-से कर लघु-लघु पदचार
बिछ गये छा-छा गीत अंछोर,
तुम्हारे पदतल छू सुकुमार
मृदुल पुलकावलि बन चहुं ओर !'[18]

'तुम्हारे परस-परस के साथ
प्रभा में पुलकित हो अम्लान
अंध-तम में जग के अज्ञात
जगमगाते तारों से गान !'[19]

इन पंक्तियों में पंत अपनी गीतसृष्टि या काव्यसृष्टि की उपमा नरम दूब से देते हैं जो अदृश्य गति से बढ़कर सारे उद्यान में बिछ गई हैं। तुम्हारे ही चरणों के आशीष से आह्लादमयी पुलकावली की भांति फैल गई हैं। तुम्हारे ही चरणों के प्रभाव से इनमें एक चमक आ गई है। इनकी मलिनता दूर हो गई है और ये जगत के निगूढ़ अज्ञात अंधेरे में तारों की भांति जगमगाने लगी हैं। यद्यपि ऊपर से देखने पर इन पंक्तियों में गीतों को दूब और तारक का रूपक दिया गया है, परंतु इनके भीतर से झांकती हुई कवि की अहंभावना छिपी नहीं रह सकी है—गीतों का अछोर या निस्सीम प्रसार हो गया है। गीत

मृदुल पुलकावली के समान आह्लादसूचक हो गए हैं। यही नहीं वे अमलिन और प्रभावपूर्ण भी हैं और संसार के अंधकार में तारों की भांति दीप्तिमान हैं—आदि विशेष वाक्यांशों के द्वारा कवि की वैयक्तिक या 'सब्जेक्टिव' भावना का उद्घाटन हो जाता है। यद्यपि कवि अपने काव्य या गीतों को किसी के चरणों का प्रसाद मानता है, परंतु वह 'किसी' भी कवि का आराध्य है। इस प्रकार की आत्मप्रशंसामूलक अभिव्यक्तियां भारतीय काव्यपरंपरा में अत्यंत विरल हैं, बल्कि इसके विपरीत कविगण अपने काव्य की तुच्छता और अपनी अशक्तता का ही निरंतर उल्लेख करते रहे हैं।

'गुंजन' काव्यसंग्रह का वास्तविक महत्त्व पंत की 'एक तारा', 'चांदनी', 'अप्सरा' और 'नौका-विहार' शीर्षक लंबी कविताओं में पाया जाता है जिनमें पंत 'पल्लव' के स्तर से ऊंचे उठे हैं। इन कविताओं में पल्लव की सारी विशेषताएं मौजूद हैं। एक ऐसी विशेषता भी है जो 'पल्लव' में नहीं पाई जाती—वह है वस्तुचित्रण की यथार्थमूलक निरीक्षणशक्ति। 'पल्लव' में पंत ने अनेकानेक वस्तुओं का उपन्यास किया है और उनके माध्यम से रूपसृष्टि की है। परंतु उन रूपसृष्टियों में रूपों, रंगों, आकृतियों, मुद्राओं आदि का वह संश्लिष्ट चित्रण कम दिखाई देता है जो इन चार-पांच कविताओं में प्रचुरता से उपलब्ध है।

'गोरे अंगों पर सिहर-सिहर
लहराता तार-तरल सुंदर
चंचल अंचल सा नीलांबर
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर,
शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर !'[20]
('नौका-विहार' से)

'गंगा के चल जल में निर्मल,
कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूँद चुका अपने मृदु दल!
लहरों पर स्वर्ण रेख सुंदर
पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर !'[21]
('एक तारा' से)

ANANDARAM DHEKIAL PHOOKAN COLLEGE
Acc. No.....
Date.....
NAGAON : ASSAM

पहले उद्धरण में गंगा के गोरे अंगों पर नीलाकाश का चंचल अंचल की भांति

सिहर-सिहर तार-तरल लहराना और फिर साड़ी की सिकुड़न की भांति वर्तुल मृदुल लहरों का शशि की रेशमी विभा से भरकर सिमटना अंचल के रूपक को और भी रूपायित करता है। इन पंक्तियों में न केवल रंगों का आकलन है, वरन् गंगा की धारा और लहरों का अंचल और साड़ी की सिकुड़न की सूक्ष्म रूपात्मकता भी दी गई है। नीलांबर का तार-तरल होना—सूर्यास्त के समय के आकाश के दृश्य को बड़ी सूक्ष्मता से अंकित करता है।

इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में डूबते हुए सूर्य को कुम्हलाता हुआ रक्तोत्पल कहना कवि की काव्यात्मक सशक्त निरीक्षण शक्ति का द्योतक है। सूर्यास्त के समय गंगा की लहरों का पहले स्वर्णिम और फिर नील हो जाना वास्तविकता से संपन्न है; किंतु उससे भी अधिक 'प्रखर शिशिर से डरकर अधरों की अरुणाई का लुप्त हो जाना' अत्यंत सटीक दृश्य-विधान है।

ये दो उद्धरण केवल नमूने का काम कर रहे हैं। वस्तुतः ऊपर निर्देशित इन रचनाओं में कवि की संश्लिष्ट चित्रणशक्ति, रूपों, रंगों और आकृतियों की सूक्ष्म पहचान और अनुरूप कल्पनाप्रसार तथा कल्पना के साथ अभीप्सित भावसंवेदन की सृष्टि सभी काव्योपकरण उपलब्ध होते हैं।

'अप्सरा' और 'चांदनी' शीर्षक कविताओं में उपयुक्त काव्यगुणों के अतिरिक्त एक हल्की दार्शनिक उद्भावना भी इस सामंजस्य के साथ जुड़ी हुई है कि उसे काव्य से अलग करना असंभव हो जाता है। उदाहरण के लिए :

'जग के सुख-दुख, पाप-ताप
तृष्णा-ज्वाला से हीन,
जरा-जन्म-भय-मरण-शून्य,
यौवनमयि, नित्य नवीन,
अतल विश्व शोभा वारिधि में
मज्जित जीवन-मीन,
तुम अदृश्य, अस्पृश्य अप्सरी,
निज सुख में तल्लीन!'[22]

में चिरंतन यौवन की कल्पना दार्शनिक अनुभूति का आधार लिए हुए है।

यहीं हम पंत की उस वैचारिकता या दार्शनिकता का भी परिचय कर लेना चाहते हैं जो 'गुंजन' की आधी से अधिक रचनाओं में व्याप्त है और जिसे

हमने 'पल्लव' काव्य से भिन्नता का मुख्य उपकरण माना है। इस वैचारिकता की भूमि पर पंत ने 'जीवन मधुसंचय को उन्मन करते प्राणों के अलि-गुंजन' पंक्तियों द्वारा सूचित भी किया है। पंत यह कहना चाहते हैं कि उनकी 'गुंजन' की वैचारिकता उनके प्राणों का अलिगुंजार है और उनके प्राणभ्रमर जीवन मधुसंचय के लिए उन्मन या आतुर हैं। 'प्राणों के अलि-गुंजन' से काव्य की स्वाभाविकता और अनिवार्यता का संकेत मिलता है और 'जीवन-मधु-संचय' से युगजीवन की नई वैचारिकता के आकलन का आशय अनुमित होता है। हम देख चुके हैं कि जहां तक इन विचारों की काव्यात्मक अनिवार्यग का प्रश्न है, पंत 'गुंजन' में अनिवार्य काव्य की सृष्टि नहीं कर सके हैं। इसके कुछ उद्धरण हम ऊपर दे चुके हैं। यहां हम यह देखना चाहते हैं कि 'जीवन-मधु-संचय' शब्दों द्वारा युगजीवन की जिन नवीन विचारभूमियों में संचरण करने का संकेत है, वह विचारभूमि कौन-सी है?

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुंजन की विचारभूमिका जीवन में सुख-दुख के सामंजस्य या समन्वय का आधार लेती है। इस नई भूमिका को पंत छायाछवियों की ('पल्लव' काल की) जीवनभूमिका से भिन्न ठहराते हैं। पल्लव काल में जीवनदृष्टि का आधार 'इच्छा' थी। पंत उस 'इच्छा' को अब 'गुंजन' में 'छल' कहने लगे हैं। उनकी दूसरी भूमिका —जिसमें वे प्रवेश कर रहे हैं—साधन की भूमिका है, जिनमें आधी और अति इच्छाएं ('पल्लव' काल की)बाधास्वरूप हैं। इच्छा की भूमि से साधन की भूमिका में पहुंचने में कवि को एक मिथ्या पीड़ा का अनुभव होता रहा है—

'रह-रह मिथ्या पीड़ा से दुखता-दुखता मेरा मन।'

यह पीड़ा वही है जो साधक को इच्छा के संसार के ऊपर उठकर संकल्प के क्षेत्र में जाने पर हुआ करती है।

प्रश्न यह है कि जिस साधनक्षेत्र में पंत प्रवेश कर रहे हैं—उसके आधारतत्त्व क्या हैं? ऊपर हमने सुख और दुख के समाहार को एक आधार बताया है। सुखदुखमिश्रित इस जीवन में सौंदर्य ही सौंदर्य देखना पंत की दूसरी उपपत्ति है। स्वतः प्रकृति में यह विशेषता व्याप्त है कि वह संसार को, जैसा वह है, स्वीकार करती है। पक्षीगण प्रातः जागकर ही सांसारिक जीवन का स्वागत करते हैं, पुष्प क्षणिक जीवन में भी हंसते आते और हंसते जाते हैं; लहरें किनारा पाएं या न पाएं—उमंग से तरंगित होती रहती हैं। जब निश्चेतन प्राणियों और

प्रकृति में इस प्रकार की सहज प्रवृत्ति है तो मनुष्यों में क्यों न हो? इसीलिए पंत मानव का आह्वान करते हुए जीवन की प्रत्येक स्थिति में आह्लाद की अनुभूति करने का संदेश देते हैं।

मानवसंसार में वैषम्य क्यों है ? सुख-दुख की अनुभूतियां पृथक्—पृथक् क्यों होती हैं? 'झर गई कली' शीर्षक कविता में पंत कहते हैं कि मानव जब कभी अपनापन छोड़ बैठता है, आत्मा के अक्षय धन से वंचित हो जाता है, तभी वह भ्रांत, अस्थिर और दुखी होता है। आत्मा के धन को पहचानना और उस पर दृढ़ता से स्थिर रहते हुए सांसारिक जीवन का साक्षात्कार करना पंत अपेक्षित ठहराते हैं।[24]

'गुंजन' काव्य में पंत की दार्शनिकता का यही स्वरूप दिखाई देता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह दार्शनिकता विशुद्ध भारतीय है और इसमें कोई भी विदेशी पुट नहीं है। यह नई नहीं, अतिशय प्राचीन दार्शनिकता है—यद्यपि पंत ने इसे नए संदर्भों में रखने का प्रयत्न किया है।

ध्यान देने की बात यह भी है कि आत्मा से संबंधित यह दर्शन लौकिक परिस्थितियों का लेशमात्र भी आकलन नहीं करता। अतएव इसे वैयक्तिक साधना ही समझा जा सकता है। इस प्रकार 'गुंजन' की दार्शनिक पीठिका विशुद्ध भावात्मक है और सांसारिक परिस्थितियों से असंपृक्त भी है। हम देखते हैं कि पंत झूले के एक छोर पर पहुंचे हुए हैं। झूला जब नीचे आकर दूसरी ओर बढ़ता है, तब वे दूसरे छोर पर पहुच जाते हैं। दूसरे शब्दों में 'गुंजन' की दार्शनिकता ऐकांतिक और एकपक्षीय है तथा युगजीवन और युगीन विचारधाराओं से उसका संबंध अतिशय विरल है।

कला पक्ष : भाषा

प्रगीतकाव्य के संगठक उपकरणों की दृष्टि से 'गुंजन' के संदेशमूलक प्रगीतों का आंशिक विवेचन ऊपर किया जा चुका है। हम यह देख चुके हैं कि किस प्रकार इन प्रगीतों में वैचारिक पक्ष मूर्धन्य हो उठा है और काव्यपक्ष को द्वितीय स्थान से संतोष करना पड़ा है। यह आवश्यक नहीं कि विचार और अनुभूति का यह असमाहित द्वंद्व किसी अच्छे काव्य में पाया ही जाए। ऐसे अनेक कवियों के उदाहरण मौजूद हैं जिन्होंने प्रगीत के भीतर वैचारिकता का समावेश करते हुए भी काव्यत्व को अस्खलित रहने दिया है। पंत ने भी इस

दिशा में प्रयत्न किया है। परंतु उनके ये प्रयत्न सर्वत्र और सर्वांशितः सफल नहीं कहे जा सकते।

जहां एक ओर यह कमी है वहीं दूसरी ओर दीर्घ प्रगीतों के स्वरूपनिर्माण में पंत अपने पूर्ववर्ती काव्य से आगे भी बढ़े हैं। 'परिवर्तन' की लंबी रचना एकतान नहीं है, बीच-बीच में शृंखलाभंग होती देखी जा सकती है, जिसके कारण खंडकाव्य के शिल्प का आभास आने लगता है। 'एक तारा' , 'नौका-विहार', 'अप्सरा' आदि रचनाओं में न केवल प्रगीत की एकतानता सुरक्षित है, वरन् उसका संपूर्ण शिल्प अटूट प्रतीत होता है। एक चित्र दूसरे चित्र से अनुस्यूत होकर आया है। इन रचनाओं में पंत का कलापक्ष अधिक समृद्ध है। कतिपय छोटे प्रगीतों में भी पंत की एकाग्रता निखर सकी है और यहां भी वे 'पल्लव' कालीन लघु प्रगीतों के शिल्पस्तर से ऊपर उठ सके हैं। कुल मिलाकर 'गुंजन' के प्रगीत 'पल्लव' के प्रगीतों की उपेक्षा अधिक पुष्ट हो चले हैं। 'पल्लव' का शिल्पघट सुंदर होते हुए भी कच्चापन लिए हुए है। उसकी शिल्पचेतना जाग्रत नहीं है। 'गुंजन' में उसकी अपेक्षा अधिक सुचिंतित काव्यशिल्प की प्रतिष्ठा हो सकी है।

जहां तक भाषा का संबंध है 'पल्लव' की भाषा के सौंदर्यपक्ष की रक्षा करते हुए 'गुंजन' में अतिरेक की कमी है। 'पल्लव' काल की भाषा स्वाभाविक विपुलता की प्रतिनिधि है। 'गुंजन' की भाषा संयम की सूचना देने लगी है।

युगांत : युगवाणी : युगांतर

'गुंजन' के निर्माण के पश्चात् पंत की तीन काव्यपुस्तकें—'युगांत', 'युगवाणी' और 'युगांतर' देखने को मिलती हैं। 'युगांत' की रचना सन् 1936 में हुई थी और एक लघु पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन भी हुआ था। 'युगांत' में कविताओं की कुल संख्या 33 थी। सन् 1939 में 'युगवाणी' लिखी गई थी और उसी वर्ष छपी भी थी। इसका एक परवर्ती संस्करण सन् 47 में प्रकाशित हुआ था जिसमें 'दृष्टिपात' शीर्षक भूमिका जोड़ी गई है। इसी क्रम में उनकी तीसरी पुस्तक 'युगांतर' सन् 48 में प्रकाश में आई। 'युगांतर', को 'युगांत' से जोड़कर एक ही पुस्तक 'युगपथ' के रूप में प्रस्तुत की गई है। 'युगांतर' में गांधीजी के निधन से संबंधित प्रायः दो दर्जन पद्य हैं। इस प्रकार 'गुंजन' के प्रकाशन (1932) के पश्चात् 1940 तक पंत की केवल तीन छोटी-छोटी काव्यपुस्तकें रचित और प्रकाशित हुई हैं। इसके मध्य 'ग्राम्या' नामक एक

स्वतंत्र पुस्तक भी सन् 1940 में छपी थी, जिसे हम उपयुक्त तीन काव्यपुस्तकों पर विचार करने के पश्चात् विवेचनार्थ ले सकेंगे। यहां हम विशेष रूप से यह उल्लेख करना चाहते हैं कि इन आठ वर्षों की अवधि में पंत का साहित्यिक निर्माण मात्रा में स्वल्प दिखाई देता है। कदाचित् यह पंत का प्रतिभा की स्फूर्ति के अन्वेषण का काल कहा जा सकता है। यों प्रकाशित पुस्तकों की दृष्टि से इसे हम 'युगवाणी-ग्राम्या काल' भी कह सकते हैं।

सबसे पहले हमारी दृष्टि पुस्तकों के नामों की ओर जाती है, क्योंकि 'युगांत', 'युगांतर' या 'युगवाणी' नाम किसी काव्यपुस्तक के भी हो सकते हैं—यह विश्वास करना सहसा कठिन हो जाता है। इन शब्दों के द्वारा जिस अर्थ का बोध होता है उसमें कुछ भी काव्यत्व नहीं है। इन शब्दों से न तो काव्यविषय का पता लगता है और न काव्य की सामान्य दिशा का ही। इस दृष्टि से देखने पर मैथिलीशरण गुप्त का 'भारत-भारती' नाम फिर भी अधिक अर्थप्रवण है, क्योंकि उससे इतना तो ज्ञात होता ही है कि उसमें भारत की राष्ट्रीय स्थिति या आदर्श का आलेखन हुआ है; यद्यपि वह नाम भी काव्योपयुक्त नहीं है, परंतु द्विवेदीयुग के लिए उसकी संभावना की जा सकती थी। छायावादयुग के लिए जो कल्पनाप्रवण या प्रतीकात्मक शीर्षकों का निर्माण करने में ऐतिहासिक ख्याति रखता है, स्वयं 'पल्लव', 'ग्रंथि', 'उच्छ्वास' आदि जिसके उदाहरण हैं—उस युग की और उसी कवि की काव्यकृतियां 'युगांतर', 'युगपथ', 'युगवाणी' नाम से अभिहित की जाएं—यह एक प्रचंड विरोधाभास है। किन्हीं चुने हुए कवियों का कोई संग्रह इन नामों से छपे, तो उसकी थोड़ी-बहुत सार्थकता हो सकती है। किंतु किसी एक कवि की कोई समग्र कृति इन नामों का आधार लेकर खड़ी हो—यह काव्यसाहित्य की भारतीय और पश्चिमी परंपराओं में भी एक आश्चर्यजनक और अनहोनी-सी बात है।

परंतु नामों से आगे बढ़कर जब हम पुस्तक के पृष्ठ पलटने लगते हैं, तब हमें उस प्रवृत्ति का बोध होने लगता है जो इन नामों के मूल में है। एक शब्द में वह प्रवृत्ति है—'प्राचीन का तिरस्कार और नवीन का विज्ञापन।' ये तीनों नाम विज्ञापनात्मक मात्र हैं, इनमें अन्य कोई कलात्मक प्रेरणा काम नहीं कर रही है—यह स्पष्ट होने लगता है। विज्ञापन की दृष्टि से भी ये नाम बहुत सार्थक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि इन नामों से यह ज्ञात नहीं होता कि 'युग' शब्द द्वारा कौन-सा अर्थ अभिप्रेत है? किस युग का युगांतर हो रहा है? वह कौनसा युग है जिसकी वाणी यह काव्यपुस्तक है? फिर यदि नए युग

की समग्र प्रवृत्तियों का अथवा केंद्रीय प्रवृत्तियों का भी इन पुस्तकों में आलेख होता, तो हमारा आंशिक समाधान हो सकता था। जिस युग का अंत, जिस युग का अंतरण तथा जिस युग की वाणी का ये पुस्तकें विज्ञापन करती हैं, उसका उतना परिचय भी नहीं देतीं, जितना कम-से-कम 'भारत-भारती' देती है। किसी भी दृष्टि से देखें, पुस्तकों को दिए गए ये नाम असाहित्यिक ही प्रतीत होंगे।

यहां हम 'युगांत', 'युगवाणी' और 'युगांतर' पुस्तकों की चर्चा समयानुक्रम से करेंगे। इस दृष्टि से पहली रचना 'युगांत' है। इसमें 33 प्रगीत हैं। इनमें से प्रायः दस कविताएं किसी पुराने युग के अंत का आवाहन मात्र करती हैं। शिशिर से जीर्ण पत्र झड़कर नए वसंत के आगमन की अगवानी करें, कोकिल जीर्ण पुरातन के नष्ट-भ्रष्ट होने की सूचना दे, मैं स्वयं मधुप्रभात लाने के लिए जीवनडाली से झड़ पड़ूं और फिर दीपशिखा की भांति वसंत आ गया, रातें विद्रुम और मरकत तथा दिन साने-चांदी के उपमान बन गए, विहंग अनादि गान गाने लगे, चिड़ियां कुंजों में चहकने लगीं, समस्त अद्रिशिखर स्वप्नशेष हो गए, भूधर स्वर्णवर्ण हो गए, तारों का आकाश दमकने लगा, जीवन का फल गदरा चला आदि चित्रों की सज्जा की गई है। इनमें केवल नवीनता के प्रति एक आकांक्षा दृष्टिगत होती है, परंतु नवीनता के दर्शन नहीं होते। दूसरे शब्दों में ये रचनाएं मेरुदंडरहित और अशरीरी ही कही जा सकती हैं। इसके पश्चात् मानवकेशरी का गर्जन तथा उससे मानस की अंधगुहाओं का कांप उठना, केशरी का जगजीवन के कानन में निर्भय डोलना आदि रूपकसकुल बाहरवीं रचना आई है। इसके पश्चात् प्राकृतिक भूमिका पर बांसों के झुरमुट में और संध्या के झुटपुटे में पक्षियों का बोलना, श्रमजीवियों का भारी पैर घर की ओर प्रस्थान करना आदि का आंशिक चित्रणात्मक और अवसादपूर्ण तेरहवां प्रगीत है। दिन-भर की मेहनत के बाद श्रमजीवी थोड़ी-बहुत उमंग के साथ ही अपने घर लौटते हैं, परंतु पंत का श्रमजीवी घर जाते समय भी भारी पैरों चल रहा है। चौदहवें प्रगीत से लेकर काफी दूर तक कवि उपदेशात्मक भूमिका ग्रहण करता है। वह 'जग जीवन के चिर महान स्वरूप' का प्रेमी बनना चाहता है। शक्ति का संचय कर भय, संशय और अंधभक्ति से मुक्त होना चाहता है। वह दीनहीन का जीवनसंबल बनना तथा छिन्न-भिन्न को समाहित करना चाहता है। 'शत मिथ्यावाद-विवाद से संसार को मुक्ति मिले' यह प्रार्थना करता है। अट्ठारहवें प्रगीत में कवि संसार को नए रूप में संवरने की आकांक्षा व्यक्त करता है, तिमिर और प्रकाश के संयोजन से विश्व का विकास देखता है। ये पंक्तियां

'गुंजन' की छाया-प्रकाश-दार्शनिकता से मिलती-जुलती हैं। पुनः कुछ प्रगीतों में सुंदरता और नूतनता का स्वागत, नई आशाओं और आकांक्षाओं—द्वारा तन, मन और जीवन के बांधें जाने का आमंत्रण है। 22, 23, 24 और 25वें प्रगीतों में संदेशभूमिका से उपर उठकर कतिपय सौंदर्यचित्र प्रस्तुत किए गए हैं। 'संध्या' शीर्षक प्रगीत में किसी प्रकार की संदेश भावना नहीं है। वह संध्या का वस्तुमुखी सुंदर चित्र मात्र है। अंतिम पद्य 'बापू के प्रति' लिखा गया है जिसमें गांधीजी के प्रति हार्दिकतापूर्ण श्रद्धांजलि व्यक्त की गई है। परंतु यहां भी अंतर शासन में रामराज्य और बाह्य में आत्महनन अक्षमता का द्वंद्वात्मक उल्लेख कर कविता को जटिल कर दिया गया है और उसे विशुद्ध रूप से श्रद्धागीत या शोकगीत बनने से बाधित किया गया हैं।

युगांत की वैचारिक भूमिका

हम ऊपर निवेदन कर चुके हैं कि 'युगांत' में प्राचीनता के त्याग और नवीनता के प्रवेश की आकांक्षा व्यक्त की गई है। इसी प्रसंग में हमने यह भी देखा है कि 'युगांत' में 'गुंजन' की-सी सुख-दुख के एकीकरण की विचारदृष्टि प्रस्तुत की गई है। अंतिम पद्य में, जो गांधीजी पर लिखा गया है, उनकी प्रशस्ति आत्मा के प्रतीक के रूप में की गई है। इससे प्रतीत होता है कि 'युगांत' में कवि अपनी एकांत भाववादी विचारणा को छोड़ नहीं सका है। इन कविताओं में नवीनता का अर्थ आध्यात्मिक आलोक भी लिया जा सकता है जो 'गुंजन' से निरंतर प्रतिबिंबित हो रहा है। कवि की शेष आकांक्षाएं नवीनता को रूपायित करने में या नवीनता को वस्तुरचना का अंग बनाने में अक्षम रही हैं। यत्र-तत्र जाति, कुल वर्ण आदि की रूढ़ियों से मुक्ति पाने का उल्लेख है। स्नेह, सहृदयता आदि को नवीन मानव का नया धर्म घोषित किया गया है। परंतु इससे अधिक नवीन दर्शन की अथवा आकांक्षित नए युगबोध की कोई धारणा कविताओं से स्पष्ट नहीं होती। इसीलिए ऊपर हमने 'युगांत' को नवीनता का उद्‌बोधक मात्र माना है, नवीनता का प्रतिष्ठापक नहीं। नवीन युगबोध का कोई भास्वर स्वरूप इन कविताओं में न होने के कारण इन्हें अंशरीरी भी कहा गया है। काव्य की दृष्टि से जो वैचारिकता इन प्रगीतों में आई है, वह केवल सांकेतिक है, स्वरूपवान नहीं है। नव जीवन का कोई साकार स्वरूप या प्रभाव यहां चित्रित नहीं है। इस दृष्टि से देखने पर 'युगांत' रचना को 'गुंजन' से पृथक् करना कठिन हो जाता है। वहां भी कतिपय आकांक्षाएं हैं और यहां भी।

कलात्मक स्थिति : भाषा

विशुद्ध कला की दृष्टि से देखने पर 'युगांत' को 'गुंजन' से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। इसमें न तो गुंजन के दीर्घ प्रगीतों का सा सौष्ठव है और न विविधता ही। प्राकृतिक चित्रण की भूमिका पर कवि 'नौका-विहार', 'एक तारा' आदि के संश्लिष्ट चित्रणों से कहीं भी आगे जाता नहीं दिखाई देता। इन वर्णनों में केवल एक नई बात मिलती है, वह है लघु प्रगीतों में यथार्थ चित्रणों के प्रति बढ़ती हुई वृत्ति। इस नई वृत्ति के परिणामस्वरूप प्रशस्त कल्पना और संश्लिष्ट रूपयोजना अंशतः बाधित ही हुई है और विशुद्ध भावात्मकता या रसात्मकता की ओर से कवि का ध्यान बंटता दिखाई देता है। प्रगीत के लिए जो भावान्विति अपेक्षित होती है उसके कारण ये रचनाएं विशृंखलता के समीप पहुंच गई हैं। 'बांसों का झुरमुट' रचना इसका प्रमाण है।

शब्दप्रयोगों की दृष्टि से यद्यपि 'युगांत' एक परिपुष्ट रचना कही जा सकती है, परंतु इसमें कुछ ऐसे भरती के शब्द भी आ गए हैं जो पंत की पूर्ववर्ती रचनाओं में दृष्टिगत नहीं होते। आठवें प्रगीत में 'वे डूब गए', 'सब डूब गए', लो! स्वर्ण-स्वर्ण अब सब भूधर' आदि पंक्तियों में 'सब डूब गए' और 'लो' आदि प्रयोग शिथिल और अनावश्यक ही कहे जाएंगे। इसी प्रकार 'सत्यप्राण', 'परित्राण' आदि शब्द काव्योपयुक्त नहीं हैं। कवि की प्रार्थनापरक गीतियां अत्यधिक गद्यात्मक हो गई हैं :

> 'पाकर, प्रभु ! तुमसे अमर दान
> करने मानव का परित्राण
> ला सकूं विश्व में एक बार
> फिर से नव जीवन का विहान !'[25]

इसी प्रकार की पंक्तियां हैं। इन प्रार्थनाओं में अभिधेय अर्थ इतना सबल हो गया है कि भावव्यंजना और रसव्यंजना मुंह ताकती रह गई हैं।

युगांत की भाषा के संबंध में किसी नवीनता का उल्लेख करना संभव नहीं है। बाहुल्य से संयम की ओर जो मोड़ 'गुंजन' में दिखाई देता है, वही यहां भी विद्यमान है यद्यपि अकाव्योचित प्रयोगों की संख्या यहां कुछ अधिक है। जैसे 'आशा-आकांक्षाओं में', 'मांसल हरीतिमा', 'आलोक-स्रोत', 'रूप-रंग-रेखाओं', 'क्षमताशील' आदि प्रयोग पंत के उच्चतर भाषाप्रतिमान से नीचे की वस्तुएं हैं।

युगवाणी

'युगांत' के पश्चात् पंत का नवीन काव्यसंग्रह 'युगवाणी' है। युगवाणी के 'विज्ञापन' में कवि ने कहा है कि 'इसमें युग के गद्य को वाणी दी गई है।'[26] सात आठ वर्ष पश्चात् लिखी गई इसी पुस्तक की 'दृष्टिपात' शीर्षक भूमिका में कवि ने कहा है कि 'युगवाणी को मैंने गीत-गद्य इसलिए नहीं कहा है कि उसमें काव्यात्मकता का अभाव है, प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार-भावना-प्रधान है। युग के खंडहर पर युगवाणी का काव्यसौंदर्य प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है। जिसे कलाप्रेमी ध्वंस के ढेर से दृष्टि हटाकर सहज ही देख सकते हैं।'[27]

पंत के इस वक्तव्य में 'युग के गद्य को वाणी' देने का वाक्यांश सर्वप्रथम विचारणीय है। इसी से मिलता-जुलता वाक्य 'ध्वंस के ढेर से दृष्टि हटाकर 'युगवाणी' के काव्यसौंदर्य (जो प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है) को देखने का आग्रह है। तीसरा विचारणीय वाक्य इसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार-भावना-प्रधान' है (जिसे काव्यात्मकता का अभाव नहीं कहा जा सकता) यहां हम क्रमशः तीनों वाक्यों या वाक्यांशों का आशय समझने का प्रयत्न करेंगे।

'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न' से कवि का अर्थ युग की वास्तविकता को, चाहे वह कुरूप ही क्यों न हो, काव्यरूप में उपस्थित करने का मानना होगा। यहां काव्य के वस्तुपक्ष के कुरूप और असुंदर होने की बात कही गई है। यह स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती कि वर्तमान युग की भारतीय परिस्थिति, मनोभावना या संस्कृति गिरी हुई है। उसे कुरूप और असुंदर भी कहा जा सकता है, किंतु कुरूप और असुंदर होने के कारण वह 'गद्य' है, पंत का यह 'गद्य' शब्द समझ में नहीं आता। यदि 'गद्य' का अर्थ अनाकर्षक अथवा सुरुचिहीन माना जाए, तभी इस शब्द की कुछ सार्थकता हो सकती है। परंतु 'गद्य' शब्द इस अर्थ में कभी व्यवहृत नहीं होता। गद्य तो साहित्य की एक विधा मात्र है। लाक्षणिक अर्थ में उसे असरस या अनाकर्षक कहा जाए, तो इससे काव्य की दुरूहता ही बढ़ती है। युग की कुरूप वास्तविकता, जो युगवाणी काव्य का वस्तुपक्ष है काव्यविषय बनने के लिए उतना ही उपयुक्त है जितना युग का सौंदर्य। कवि किसी भी वस्तु को, सुंदर हो या असुंदर, काव्य के माध्यम से व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है, बल्कि देखा यह जाता है कि कुरूप स्थितियों, अभावों और त्रुटियों को लेकर की गई काव्यरचना

अधिक ऊंचे उत्कर्ष पर पहुंचती है। सुंदर वस्तुस्थिति का चित्रण करने में भावों का वह उद्वेलन प्रायः नहीं आता जितना हीनताओं के चित्रण करने में आता है, क्योंकि कविमानस में हीनता की प्रतिक्रिया अधिक प्रखर होती है। विश्वसाहित्य में 'ट्रेजेडी' की कल्पना वस्तुपक्ष की इसी कमजोरी को लेकर की गई है और हम यह जानते हैं कि सुखांत की उपेक्षा दुखांत कृतियां अधिक मर्मस्पर्शिनी होती हैं। ऐसी स्थिति में पंत का यह विज्ञापन कि वे 'युग के गद्य को वाणी' देना चाहते हैं—किसी दूसरे ही अर्थ में समझा जा सकेगा। उस दूसरे अर्थ का आंशिक संकेत ऊपर उद्धृत पंत के इस वाक्य से लेना पड़ेगा जिसमें उन्होंने लिखा है कि 'युग के खंडहर पर युगवाणी का काव्यसौंदर्य देखा जा सकता है।' यहां पर पंत काव्यविषय की उपमा 'खंडहर' से और काव्य की 'प्रभात के स्वर्णिम आतप' से देते हैं। दूसरे शब्दों में वे वर्णनीय विषय और वर्णन को दो पृथक् इकाइयां मानते हैं। यह मान्यता अपने में ही साहित्यिक समस्या बन जाती है, जिस पर विचार करना आवश्यक है।

क्या हम वर्णनीय विषय से वर्णन को पृथक् कर सकते हैं? क्या विषय की उपमा 'खंडहर' से और काव्य की उपमा स्वर्णातप से दी जा सकती है? कवि की प्रतिक्रिया क्या वर्ण्य विषय पर भिन्न और वर्णन पर भिन्न हो सकती है? ये कतिपय प्रश्न हैं जिन पर विचार करना ही होगा। जहां तक हम देखते हैं, काव्य में वर्ण्य विषय की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उसकी कोई सत्ता ही नहीं होती। काव्य में वर्णन या उपस्थापन ही एकमात्र वस्तु है, दूसरी कोई वस्तु स्वीकार ही नहीं की जा सकती। वर्ण्य वस्तु और वर्णन के प्रति कवि की प्रतिक्रिया भिन्न या पृथक् होने की स्थापना भी निराधार है। काव्य एक समरस और अद्वय व्यापार है; जो कवि काव्य की इस अद्वयता को नहीं समझते, वे अपने कवि-व्यक्तित्व की ही कमजोरी का विज्ञापन करते हैं। कवि के काव्यव्यापार की प्रेरक काव्यवस्तु ही है। वह काव्यवस्तु ही काव्य में परिणत होती है जिस प्रकार हिमशिखर द्रवित होकर जलरूप में परिणत होते हैं। दोनों का वास्तविक स्वरूप एक ही है, दो नहीं :

'ऊपर हिम था नीचे जल था
एक तरल था एक साधन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।'[28]

प्रसाद की ये पंक्तियां इसी उद्वयता का संकेत करती हैं और यही काव्य की

समरसता या अद्वयता भी है। काव्यरचनाप्रक्रिया की आधुनिक व्याख्याओं को देखने पर भी यही स्पष्ट होता है कि वर्णनीय विषय और वर्णित पदार्थ में कोई अंतर या पृथक्ता अकल्पनीय है।

जो कवि काव्यप्रक्रिया को वर्णनीय और वर्णित की द्विधात्मक या द्वैतभूमिका पर रखकर देखते हैं वे ही पंत के उपर्युक्त 'विज्ञापन' के दायरे में आते हैं। परंतु ऐसे कवियों को सहज प्रतिभा का अधिकार नहीं माना जा सकता। ये कवि आयाससाध्य काव्य के ही स्रष्टा हो सकते हैं। पंत भी यहां इसी भूमिका पर विद्यमान दिखाई देते हैं।

ऊपर उद्धृत पंत के वाक्यांशों से इसी की पुष्टि होती है। पंत का दूसरा वाक्यांश कि 'युगवाणी का काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार-भावना-प्रधान है' अब यहां हमारे विवेचन का विषय बन जाता है। पंत के वाक्य में आए हुए 'अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार-भावना-प्रधान' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। 'अप्रच्छन्न'शब्द से उनका क्या आशय है, यह समझना कठिन है। क्या कोई काव्य प्रच्छन्न भी होता है ? यदि नहीं, तो उसके अप्रच्छन्न होने की कल्पना ही कैसे की जा सकती है ? यहां पंत कदाचित् व्यंजनाहीन, इतिवृत्तात्मक, काव्य को 'अप्रच्छन्न' शब्द से अभिहित कर रहे हैं। एक अन्य प्रकार का काव्य भी जो स्वीकृत काव्यात्मक गुणों से भिन्न प्रकार का होता है 'अप्रच्छन्न' कहा जा सकता है। वह काव्य है सीधे साक्षात्कार का काव्य, जिसके स्रष्टा प्रायः भक्त और रहस्यवादी हुआ करते हैं। वे जो कुछ देखते हैं, वही लिखते हैं। परंतु 'युगवाणी' के काव्य को साक्षात्कार का काव्य किसी भी अर्थ में नहीं कहा जा सकता, इसलिए उसके 'अप्रच्छन्न' होने का अर्थ इतिवृत्तात्मक और काव्यहीन ही हो सकता है। यहां 'अप्रच्छन्न' शब्द को किसी भी अन्य संदर्भ में देखना संभव नहीं जान पड़ता। उनका दूसरा शब्द 'अनलंकृत' है। काव्य में अलंकार सहजात और अविच्छेद्य होने पर ही स्वागतयोग्य होते हैं। परंतु पंत यहां अलंकार और काव्य के इस अभिन्न संबंध को भी कदाचित् स्वीकार नहीं करते, तभी उन्होंने 'अनलंकृत' शब्द का प्रयोग किया है। स्फुट अलंकार न होने पर भी कहीं-कहीं काव्य माना गया है। मम्मट की यह प्रसिद्ध उक्ति—'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' से ज्ञात हो जाता है। स्फुट अलंकार 'युगवाणी' में न होते, तो भी कोई हानि न होती, यदि अस्फुट या अनाम अलंकृतियां यह विच्छित्तियां इस काव्य में पाई जातीं। वक्रोतिकार ने इसको भी, अपने में समाहित करने वाली बड़ी विच्छित्ति को काव्यप्राण माना है। उसे स्वभावोक्ति

से अलग कर काव्यात्मकता का आधार कहा है। क्या वक्रोक्तिकार की निर्देशित यह शैली 'युगवाणी' में गृहीत हुई है ? यह हम आगे देखेंगे।

पंत का तीसरा वाक्यांश 'विचार-भावना-प्रधान' है जिससे वे 'युगवाणी' काव्यपुस्तक को समन्वित मानते हैं। यहां 'विचार-भावना' शब्द में विचार और भावना दो इकाइयां दिखाई देती हैं। कवि की सर्जनात्मक अनुभूति के द्वारा इन दोनों का समन्वय हो सकता है, इसे मानने में कोई कठिनाई नहीं है। परंतु यदि विचार और भावना अलग-अलग रहते और अनुभूति द्वारा अनुस्यूत नहीं होते, तब वे विशुद्ध काव्य के लिए एक प्रश्नचिह्न की सृष्टि अवश्य करते हैं। 'युगवाणी' में यह प्रश्नचिह्न निरंतर आया है, यह हम आगे देख सकेंगे।

हमारे इस संपूर्ण विवेचन का अर्थ यह नहीं है कि काव्य में दो या अधिक तत्त्वों का समागम नहीं हो सकता। वस्तुतः भाव शब्द द्वारा भारतीय मनीषियों ने किसी एक वस्तु का नहीं, बल्कि वस्तुसमुच्चय का अर्थ लिया है। परंतु यह वस्तुसमुच्चय समाहित और समन्वित होकर ही उत्कृष्ट काव्य का उपादान बन सकता है।

यह तो हम ऊपर देख चुके हैं कि किसी काव्य में कल्पना की, किसी में दार्शनिकता या विचार की और किसी में भाव या अनुभूति की प्रमुखता होती है। परंतु कल्पना, विचार, दार्शनिकता, भावना या अनुभूति का एकान्वय काव्य के लिए अपेक्षित है। संक्षेप में यही हमारा अभिमत है।

ऊपर के सैद्धांतिक विवेचन के पश्चात् हम 'युगवाणी' से संबंधित दो अन्य प्रश्नों पर आते हैं जिन्हें व्यावहारिक प्रश्न कहा जा सकता है। इनमें से एक है 'युगवाणी' की काव्यशैली, जिसे हम उसका रूपपक्ष भी कह सकते हैं और दूसरा है भाव को वहन करने वाला भाषा का। हम देखते हैं कि पंत 'युगवाणी' में गंभीर भावस्तर से उतरे नहीं हैं। जिस किसी प्रसंग को उन्होंने उठाया है उसका उपस्थापन प्रायः गंभीर स्तर पर ही किया है। सामयिकता, आधुनिकता और यथार्थ आदि का नाम लेते हुए भी उन्होंने अभिव्यक्ति में कोई विशिष्ट नवीनता लाने का प्रयत्न नहीं किया है। न तो उन्होंने रोजमर्रा के जीवन की कोई विशद अवतारणा की है और न हास्य, विनोद या व्यंग्य का ही सहारा लिया है। इस दृष्टि से पंत एक ओर नए कवियों या नई कविता की भावराशि से पृथक् हो गए हैं और दूसरी ओर कवि निराला की 'कुकरमुत्ता' जैसी रचनाओं

से भी अलग पड़ गए हैं। वे निरंतर अपने वक्तव्य को क्रमागत सजी-संवरी शैली में ही व्यक्त करते गए हैं। जहां कहीं आसान या चुटीली भाषा की आवश्यकता हो सकती है—वहां भी वे बोझिल भाषा का प्रयोग करते गए हैं। उदाहरण के लिए पैसेवालों की चर्चा करते हुए वे कहते हैं :

'वे नृशंस हैं : वे जन के श्रमबल से पोषित
दूहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित।
नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अतः अपरिचित।'[29]

इन पंक्तियों में न तो व्यंग्य उभर कर आया है न दैनिक बोलचाल की कैंची ही चलाई जा सकी है। ऐसा जान पड़ता है मानो पंत लोकजीवन के स्तर से ऊपर उठकर किसी बड़ी ऊंचाई से अपनी बात का ऐलान कर रहे हैं।

हम यह नहीं कहते कि ऐसे भावों या विचारों के अभिव्यंजन के लिए गंभीर भाषा का प्रयोग ही नहीं किया जा सकता। परंतु यह अवश्य कहेंगे कि पंत की गंभीर भाषा इन प्रसंगों में अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकी है। यहां पुनः हमें 'ट्रेजेडी' की कल्पना पर आना पड़ता है जिसमें गंभीर आशयों की अभिव्यक्ति उच्चतर भाषा द्वारा की जाती है। परंतु पंत की ये कविताएं 'ट्रेजेडी' की सृष्टि करने में असमर्थ हैं। ये तीखे व्यंग्य की भी सृष्टि नहीं करतीं। इसलिए इन पर उपदेशात्मकता का मोटा परदा पड़ा हुआ है।

यहां हम 'युगवाणी' की एक कविता को लेकर अपने आशय की ओर भी स्पष्ट व्याख्या करना चाहते हैं। उनकी एक कविता है 'समाजवाद-गांधीवाद' :

'साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतंत्र महान,
भव जीवन के दैन्य, दुःख से किया मनुजता का परित्राण।
अंतर्मुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग में उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु विधान।
गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य-अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।'[30]

इन छः पंक्तियों में पंत के नए काव्यादर्श के प्रायः सभी उपकरण मिल जाते हैं। इसमें 'गद्य को वाणी' देने का प्रयत्न 'अप्रच्छन्न, अनलंकृत भाषा तथा

विचार-भावना-प्रधान स्वरूप भी दिखाई देता है।' पंत कहते हैं कि 'युगवाणी' की भाषा सूक्ष्म है। उसमें विश्लेषण का सौंदर्य है, काव्यात्मकता का अभाव नहीं है।'[31]

जब हम इन पंक्तियों में पंत के द्वारा निर्देशित तत्त्वों की खोज करने लगते हैं, तो सबसे पहले यह देखते हैं कि यह सारा का सारा गद्यलेखन है। गद्य भी केवल पद्यबद्ध है। गद्य को वाणी देने से यदि पंत का यही आशय है, तो हम कह सकते हैं कि गद्य को वाणी तो दी गई है, काव्यात्मकता नहीं दी गई है। इसमें 'अप्रच्छन्न अलंकार' कहीं दिखाई नहीं देते। अप्रच्छन्नता का प्रश्न ही नहीं उठता। यह अनलंकृत रचना भी है और अलंकार भी कल्पनात्मक अथवा उक्तिमूलक सौंदर्य से रहित है। जब हम इसकी भाषा पर दृष्टि डालते हैं, तो भाषा की सूक्ष्मता नामक कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। विश्लेषण का कौन-सा सौंदर्य इस भाषा में है—यह भी ज्ञात नहीं हो पाता। कुल मिलाकर ये पंक्तियां इतनी चमत्कारहीन और गरिष्ठ हैं कि काव्य के रूप में इन्हें पढ़ पाना भी कठिन है। पंत इसे 'विचार-भावना' का काव्य कहना चाहते हैं, परंतु इसमें विचार ही विचार है, भावना तो अपने अस्तित्व को ही सूचित नहीं कर पाती। इन पंक्तियों में काव्य की संवेदनशीलता पनाह मांग लेती है और सारा काव्यविधान ही किसी भावात्मक तथ्य को रूपायित करने में असमर्थ हो गया है। रूपविधान के नाम पर यहां कुछ भी नहीं है। इसके बदले साम्यवाद, जनतंत्र, अंतर्मुख अद्वैत, वस्तुविधान, मानवता का मान, मनुजोचित नव संस्कृति का निर्माण आदि अकाव्योचित शब्दों की भरमार है। यदि पंत इसी को काव्यरचना का नया प्रतिमान कहते हैं, तो ऐसे प्रतिमान को स्वीकार करना किसी भी काव्यप्रेमी के लिए शायद ही संभव हो। प्रगीतकाव्य में कथित वस्तु और कविव्यक्ति का जो आत्मीय संबंध अभीष्ट होता है, उसकी झलक नहीं दिखाई देती।

यहीं हम दूसरे प्रश्न के समक्ष आ जाते हैं जो भाषा का पक्ष है। हम प्रायः विषयानुरूप या भावानुरूप भाषा को आदर्श काव्यभाषा कहते हैं। भाषा की विषयानुरूपता या भावानुरूपता से क्या आशय है ? हमारी समझ में उसका आशय है अभीष्ट रस या संवेदन की सृष्टि करने वाली भाषा। क्या हम कह सकते हैं कि 'युगवाणी' की भाषा इस कार्य को संपन्न करती है? इसके विवरण तो हम आगे देखेंगे, परंतु यहां इतना कहना आवश्यक है कि अभीष्ट रस या भावसंवेदन की सृष्टि में असमर्थ भाषा को विषयानुरूप या भावानुरूप भाषा नहीं कहा जा सकता। आदर्श भाषा का एक दूसरा प्रतिमान कवि के अपने संस्कार

और रुचि से निर्मित वाक्यावली को भी कहा गया है। कोई कवि जिस विशिष्ट भाषा का अभ्यासी हो जाता है, उसी का प्रयोग प्रायः करता रहता है। परंतु उस स्थिति में उसे भाषानुरूप विषयों या भावों की खोज करना आवश्यक हो जाता है। भाषाप्रयोग के संबंध में एक प्रक्रिया भाव से भाषा की ओर दूसरी भाषा से भाव की ओर प्रवृत्ति चाहती है। यही भावनारूप भाषा का वास्तविक अर्थ है जो काव्यसाहित्य में गृहीत होता है।

'युगवाणी' की भावसंपत्ति भाषागत नवीन प्रयोगों की आकांक्षिणी रही है। पंत जब इतनी तत्परता से बदले हुए समय और बदलते हुए साहित्यिक प्रतिमानों का आग्रह करते हैं, तब उन्हें भाषाप्रतिमान पर भी पूरी दृष्टि डालनी और निगाह रखनी थी। जहां तक हम देख पाते हैं इस कार्य की ओर पंत सहज भाव से या सचेत रूप से उन्मुख नहीं हुए हैं। यह नहीं कि उन्होंने नए शब्दों का प्रयोग नहीं किया या भापा के स्वरूप पर उनकी दृष्टि ही नहीं गई, फिर भी तथ्य यह है कि जितनी गहरी दृष्टि की अपेक्षा थी, पंत उतनी गहराई में नहीं गए।

नए विचारों, नवीन तथ्यों और नई भावराशि से काव्य को सज्जित करते हुए उन्होंने उसके लिए नए वाहन (भाषा) की समुचित व्यवस्था नहीं की है। कदाचित् इसीलिए 'युगवाणी' की कविताओं में संपूर्ण समन्वय या एकात्मकता की कमी रह गई है।

अब इस सामान्य सर्वेक्षण के पश्चात् हम 'युगवाणी' की रचनाओं के वास्तविक स्वरूप को देखना चाहेंगे, पंत की 'गुंजन' और 'युगांत' की भांति 'युगवाणी' की समस्त रचनाएं कतिपय श्रेणियों में रखकर देखी जा सकती हैं। सबसे अधिक और प्रमुख प्रवृत्तिसूचक रचनाएं आदेशात्मक हैं। ये आदेश और उपदेश एक दार्शनिक पाश में बंधे होने के कारण स्वच्छंद अनुभूति और सहज कविता के लिए स्थान नहीं छोड़ते। 'युग-उपकरण', 'नव-संस्कृति', 'पुण्यप्रसू', 'चींटी', 'पतझर', 'मूल्यांकन', 'उद्बोधन', 'खोलो', 'कर्म का मन', 'रूप का मन', 'रूप-पूजन', 'मानव-पशु', 'नारी', 'नर की छाया', 'सुमन के प्रति', 'द्वंद्व', 'मन के स्वप्न', 'खोज', 'वस्तु-सत्य', 'भव मानव' आदि कविताएं इसी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। इन्हें जहां कहीं से पढ़ना आरंभ कीजिए—आपको एक आदेश अवश्य सुनाई देगा। भरो, करो, लो, रो, हों आदि अनुज्ञात्मक प्रयोग सैकड़ों की संख्या में पाए जाते हैं। इन कविताओं में कवि जिस नवीन जीवन-संदेश का पाठ

पढ़ाता है—उसे हम आगे देखेंगे। यहां केवल कविता की मूल प्रवृत्ति का उल्लेख किया जा रहा है ऐसी रचनाओं में कुछ तो विशुद्ध गद्यात्मक हैं; कुछ में रूप, भाव, कर्म, जड़, चेतन आदि दार्शनिक शब्दों का प्रयोग है; और कुछ में वस्तुकथन के साथ-साथ ऐसे अलंकार जोड़ दिए गए हैं जो केवल विषयवस्तु के स्पष्टीकरण का काम करते हैं। इन तीनों मुख्य प्रकारों का एक-एक उदाहरण यहां दिया जाता है :

विशुद्ध गद्यात्मकता :

'भाव कर्म में जहां साम्य हो संतत,
जग-जीवन में हों विचार जन के रत,
ज्ञान-वृद्ध, निष्क्रिय न जहां मानव मन,
मृत आदर्श न बंधन, सक्रिय जीवन।'[32]
('नव संस्कृति')

निराकार दार्शनिकता :

'मुझे रूप ही भाता।
प्राण ! रूप ही मेरे उर में मधुर भाव बन जाता।
जीवन का चिर सत्य,
नहीं दे सका मुझे परितोष,
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती,
सूक्ष्म बीज से कोष।'[33]
('रूप सत्य')

और आंशिक आलंकारिकता :

'युग-युग के भेदों को धुन-धुन,
बर्बरता, पाशवता चुन-चुन,
नव मानवता से ढंक दो हे,
कुत्सित नग्न रूप जन-जन का।'[34]
('लेन देन')

इसमें से प्रथम उदाहरण शब्दान्वय कर देने पर गद्यात्मक पंक्तियां बन जाता है। ऊपर की पंक्तियों का अन्वय इस प्रकार होगा :

जहां भाव कर्म में संतत साम्य हो,
जहां जन के विचार जग-जीवन में रत हों,

जहां मानव-मन ज्ञान-वृद्ध, निष्क्रिय न हो,
जहां मृत आदर्श बंधन न हों
जीवन सक्रिय हो।

दूसरे उदाहरण में भी कोरी गद्यात्मकता है। परंतु उसमें निराकार दार्शनिकता के जुड़ जाने से और भी उलझन आ गई है। इसमें आए हुए 'रूप', 'भाव', 'जीवन का चिर सत्य', 'ज्ञान', 'वस्तु' आदि दार्शनिक प्रयोग कविता को एकदम निराकार बना देते हैं। केवल अंतिम पंक्ति 'सूक्ष्म बीज से कोष' (सूक्ष्म बीज की अपेक्षा मुझे कोष अच्छा लगता है) कविता में क्षीण रूपात्मकता का आभास देती है।

तीसरी कविता में 'तन-मन के अंधकार को कातने और नए प्रकाश के रजत-स्वर्ण से नव जीवन का पट बुनने का रूपक प्रस्तुत किया गया है। जबकि कबीर जैसे कवि भी अपने रूपकों में निराकार को साकारता देने का लक्ष्य रखते थे, तब पंत साकार को निराकार रूपक से व्यंजित करते हैं। बर्बरता पाशवता, मानवता आदि शब्द न तो काव्य की रूपात्मकता को संवारते हैं और न अन्य दृष्टि से काव्यात्मक प्रयोग कहे जा सकते हैं। लंबे-लंबे भाववाचक शब्दों से कविता के पाठकों को परेशानी ही होती है—अनुभूति का स्फुरण नहीं हो पाता।

'युगवाणी' की दूसरी प्रवृत्ति छायावाद की आलंकारिकता को वर्जित कर नवीन काव्यशैली का संकेत करने में दिखाई देती है। इस प्रवृत्ति का आरंभ अंशतः 'गुंजन' काव्यसंग्रह से ही हो चुका था—यहां वह अधिक आग्रहपूर्वक सामने लाई गई है। छायावाद की कल्पनाबहुल आलंकारिकता को संयमित करने की आवश्यकता थी—यह हम समझ सकते हैं। परंतु इसको किसी अतिवादी सीमा पर ले जाकर अलंकार या रूपतत्त्व का निषेध करना काव्य की कोई संतुलित दृष्टि नहीं कही जा सकती। अलंकार से निरलंकार की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति एक बड़े अर्थ में आधुनिक है। आज की नई यथार्थवादी शैली में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है और यह किसी सीमा तक स्वाभाविक भी है। तथ्यमूलक चित्रण में अलंकार की स्थिति अधिक अपेक्षित नहीं होती, क्योंकि ये तथ्यात्मक चित्रण स्वयं ही अलंकार का काम करने लगते हैं। परंतु जहां ऐसे चित्रण आलंकारिक चमत्कार की सृष्टि नहीं करते, वहां अलंकारों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। 'युगवाणी' की कविताओं में वस्तुचित्रण की भूमिका बिंबात्मक नहीं बन सकी है। अतएव वहां अलंकारों की आवश्यकता बनी रह गई है। उदाहरण के लिए हम पंत की 'चींटी' शीर्षक कविता ले सकते हैं :

'देखो ना किस भांति
काम करती वह संतत ?
कन-कन करके चुनती अविरत !
गाय चराती, धूप खिलाती,
बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती,
दल के दल सेना संवारती,
घर, आंगन, जनपथ बुहारती !'[35]

इन पंक्तियों में चींटी के जिम्मे जितने काम सौंपे गए हैं, वे आनुक्रमिक हैं, उन्हें बिंबात्मक नहीं कहा जा सकता। चींटियों का गाय चराना, धूप खिलाना, सेना संवारना, घर-आंगन बुहारना आदि चामत्कारिक प्रयोग हैं और इनसे काव्य की ग्राहकता में वृद्धि हुई है। परंतु इन सब क्रियाओं में भी संश्लिष्ट रूपयोजना या चित्रणकौशल स्फुरित नहीं हो सका है। कदाचित् यहां भी अलंकार के माध्यम से क्षतिपूर्ति की जा सकती थी। फिर भी हम यह स्वीकार करेंगे कि अनलंकार की दिशा में पंत का यह अभियान नई चेतना के अनुरूप ही नहीं, एक हद तक सफल भी हुआ है। यहां केवल एक अभाव खटकता है, वह है ऐसी रचनाओं में भाषा की बोझिलता। ये कविताएं अधिक स्वच्छंद और निरायास भाषा की अपेक्षा रखती थीं।

'युगवाणी' की तीसरी प्रवृत्ति कतिपय आत्मनिवेदनात्मक और प्रशस्तिमूलक रचनाओं में दिखाई देती है। 'गुंजन' की निवेदनात्मक कविताएं कवि की जिस अहंभावना को नहीं छोड़ सकीं, वे प्रायः युगवाणी में आकर छूट गई हैं। निवेदन की यह अधिक विकसित स्थिति कही जाएगी।

प्रशस्तिमूलक कविताओं में कवि की भावना अत्यंत उदार और निर्लेप दिखाई देती है। यद्यपि 'बापू', 'मार्क्स के प्रति' आदि कविताएं प्रशस्तिमूलक ही कही जाएंगी। परंतु 'अनामिका के कवि' (निराला) तथा आचार्य द्विवेदी (महावीर प्रसाद द्विवेदी) पर लिखी गई तीन कविताएं उपर्युक्त दोनों कविताओं के दार्शनिक बोध से उन्मुक्त और सहज काव्य का प्रत्यय देती हैं।

'युगवाणी' में यथार्थचित्रण की प्रवृत्ति भी उल्लेखनीय है, परंतु वह विरलता से पाई जाती है। 'चींटी' की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। 'दो लड़के', 'गंगा की सांझ', 'गंगा का प्रभात' आदि रचनाओं में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। 'कृषक'

शीर्षक कविता में भी यथार्थ का प्रत्यय है, परंतु वह अधिक तिक्त हो गया है। वास्तव में पंत की यथार्थोन्मुख चित्रण की सफल कविताएं प्रकृति या पाकृतिक दृश्यों से सज्जित हैं और पंत जैसे आरंभ से ही प्रकृतिप्रेमी कवि के लिए अतिशय स्वाभाविक भी हैं।

दो एक कविताएं प्रतीकात्मकता का भी आभास देती हैं। कदाचित् यह भी पंत की एक नई काव्यदिशा है जिसका विकास उनकी आगामी रचनाओं में हुआ है। 'कृष्णधन' कविता इसी प्रवृत्ति का एक उदाहरण है।

युगवाणी का दार्शनिक पक्ष

विशुद्ध दार्शनिक भूमिका पर 'युगवाणी' में पंत गांधीजी के अध्यात्मवाद और मार्क्स के भौतिकवाद के द्वंद्वों में फंसे हुए हैं। पंत इस द्वंद्व का परिहार इस प्रकार करते हैं कि गांधीजी के तत्त्वज्ञान को व्यक्तिगत आत्मसाधना की भूमि पर रखा जाए और मार्क्स के आदर्शों को सामाजिक जीवन के उपयोग में लाया जाए। यह समाधान इतना सरलीकृत है कि इसके आधार पर कोई सुस्पष्ट दार्शनिक सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता। दो स्तरों पर दो वस्तुओं को रख देना ही पर्याप्त नहीं होता, दोनों को अपनी समग्रता में समाहित करने की आवश्यकता भी होती है। युगवाणी में पंत ने ऐसे किसी समाहार का प्रयत्न नहीं किया है। मार्क्सदर्शन की सारी या अधिकांश स्थापनाएं गांधीदर्शन के विरुद्ध जाती हैं। गांधीदर्शन को यदि व्यापक भूमि पर मानवतावादी दर्शन कहें, तो मार्क्स उससे (मानवतावाद से) सहमत होने को तैयार नहीं हैं। वैसी स्थिति में उक्त दोनों दर्शनों को आसानी से एक-दूसरे के समीप लाना संभव नहीं है।

'युगवाणी' में पंत ने यत्र-तत्र मनुष्य के सामाजिक अधिकारों और वर्तमान वैषम्यों का संकेत किया है। अधिक से अधिक इसे भावात्मक समाजवाद की संज्ञा दी जा सकती है। परंतु इसे मार्क्सवादी तत्त्वचिंतन का पर्याय किसी अर्थ में नहीं माना जा सकता।

यही स्थिति पंत के गांधीतत्त्वज्ञान के संबंध में दिखाई देती है। गांधीजी केवल आत्मतत्त्व के प्रतिष्ठापक नहीं थे, वे एक महान क्रांतिकारी नेता और भारत के जनसमाज के मार्गदर्शक भी थे। उन्हीं के नेतृत्व में देश को स्वतंत्रता मिली थी। अतएव गांधीजी कोरे आत्मकेंद्रित दार्शनिक नहीं कहे जा सकते। वे एक महान जनवादी रहे हैं। वैसी स्थिति में गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों को समग्रता

की भूमि पर देखना अधिक आवश्यक है। परंतु पंत इस कार्य में संलग्न नहीं हुए हैं। इसके अतिरिक्त पंत की अपनी आदर्शोन्मुखी दार्शनिकता भी 'युगवाणी' में प्रतिफलित हुई है। वे नवमानव का अवाहन करते हैं। इस नवमानव में वे आकाश की शांति, रवि की कांति, जलनिधि की निस्तलता, मरुत की शक्ति और पृथ्वी का वैभव देखना चाहते हैं। पंत की यह छायावादी प्रवृत्ति 'युगवाणी' में निःशेष नहीं हुई है। बल्कि हम कह सकते हैं कि गांधीवाद और मार्क्सवाद की बौद्धिक विवृततियों की अपेक्षा उनकी निजी छायावादी कल्पना दार्शनिक दृष्टि से भी अधिक आकर्षक और मनोरम है।

कला और भाषा

'युगवाणी' के प्रगीतकौशल के संबंध में हम यह कह सकते हैं कि इनमें पंत छायावादी परोक्ष उपमानों की अपेक्षा प्रत्यक्ष उपमानों या रूपों का अधिक प्रयोग करने लगे हैं। इससे कविता में एक प्रकार मी पार्थिवता आई है, जो स्वागतयोग्य है। हमें खेद इतना ही है कि यह प्रत्यक्षरूपयोजना 'युगवाणी' में इतनी विरल क्यों हैं। यदि पूरे काव्य में यह व्याप्त होती, तो एक ओर निराकार दार्शनिकता से और दूसरी ओर आदेशात्मकता में से हमें छुटकारा मिल सकता था।

'युगवाणी' की भाषा के संबंध में हमें इतना ही कहना है कि बदली हुई विचारधारा और भावधारा के अनुरूप भाषा का निर्माण 'युगवाणी' में नहीं हो पाया है। कदाचित् इसी से 'युगवाणी' एक बोझिल कृति ही बनकर रह गई है। यदि भाषा की भूमि पर अधिक सशक्त प्रयोग किए जाते, तो 'युगवाणी' इस आरोप से मुक्त हो सकती थी। पंत के पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा नई भाषा के संस्कार 'युगवाणी' में यत्र-तत्र मिलते हैं। इसके दो अच्छे उदाहरण 'मुझे स्वप्न दो' और 'आवेश' शीर्षक कविताएं हैं। यदि इन कविताओं के ही सांचे में 'युगवाणी' की सारी भाषा ढली होती तो पंत की भाषागत उपलब्धि को दूसरे ही शब्दों में याद किया जाता। फिर भी जो स्वल्प परिवर्तन भाषा को भावानुरूप बनाने के किए गए हैं वे स्वागतयोग्य हैं।

युगांतर

'युगांत' और 'युगवाणी' के पश्चात् यद्यपि रचनाक्रम से 'ग्राम्या' का निर्माण हुआ था, परंतु विषय और भावभूमिका को देखते हुए 'युगांतर' नामक प्रगीतसंग्रह उक्त दोनों कृतियों के अधिक निकट पड़ता है। 'युगांतर' में गांधीजी के निधन पर प्रायः दो दर्जन कविताएं हैं और शेष प्रायः डेढ़ दर्जन कविताएं

गांधीयुग के संस्कारों और पंत की 'युगवाणी' शैली के अनुरूप हैं। इसीलिए 'युगांतर' का विवेचन इस स्थान पर किया जा रहा है। 'ग्राम्या' में कवि की नई शैली का नया समारंभ पूरी तरह स्पष्ट हो गया है। 'युगांत', 'युगवाणी' और 'युगांतर' में जो शैली प्रयोग में लाई गई है, उससे 'ग्राम्या' की शैली बहुत दूर तक बदल गई है। एक प्रकार से 'ग्राम्या' पंत के मध्यवर्ती काव्य की चरम बिंदु कही जा सकती है। अतएव यह उचित समझा गया कि 'ग्राम्य' का अनुशीलन पूर्ववर्ती तीनों पुस्तकों के अंत में किया जाए।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि 'युगांतर' में गांधीजी के निधन पर लिखी गई प्रायः दो दर्जन प्रशस्तियां या श्रद्धांजलियां संकलित की गई हैं। पंत इन कविताओं में शोकगीति के नजदीक नहीं पहुंचते, वरन् प्रशस्ति तक ही सीमित रह जाते हैं और वह प्रशस्ति भी गांधीजी की जीवनघटनाओं के आधार पर न होकर केवल उनके दार्शनिक पक्ष का आख्यान करती है। उनकी दार्शनिकता से निर्मित उनके व्यक्तित्व के उदात्त स्वरूप का वर्णन भी इन कविताओं में किया गया है, यद्यपि यह उदात्तता काव्य में भावात्मक न होकर अधिकतर वैचारिक ही बन सकी है। कई अन्य कविताओं में भारत के नए विकास का संकल्प भी दिखाई देता है। इस संकल्प में देशभेद, जातिभेद आदि को भुलाकर नए मानव के अवतरण की कामना की गई है। कुल मिलाकर इन कविताओं में कवि का वैयक्तिक संस्पर्श कम है और गांधीजी की आत्मिक महिमा का आलेख अधिक है। कदाचित् इसी कारण ये कविताएं उतनी लोकप्रिय नहीं बन सकीं, जितनी वे अन्यथा बन सकती थीं। गांधीजी के व्यक्तित्व को उनके महान कार्यों और उनकी अंतिम महामृत्यु के परिवेश में न देखकर कवि ने एक आदर्श या प्रतीक के रूप में उन्हें स्मरण किया है। इस कारण इन कविताओं में फिर वही निराकारता आ गई है जिसका हम 'युगांत' और 'युगवाणी' में संकेत कर चुके हैं।

'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति', 'मर्यादा पुरुषोत्तम' (राम के प्रति), 'अरविन्द के प्रति' तथा 'श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर की पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर' कुछ अन्य प्रशस्तियां 'युगांतर' में प्राप्त होती हैं। 'रवीन्द्र के प्रति' कविता में न तो किसी कृति का नामोल्लेख है, न उनके काव्य साहित्य के किसी प्रवर्तक या क्रांतिकारी स्वरूप की व्याख्या ही है। कविता का मुख्य अंश स्वर्ग में रवीन्द्रनाथ का स्वागत, देवलोक में उनकी प्रतिक्रिया और पुनः पृथ्वी पर उनके आगमन की आशंका से समन्वित है। इन्हीं कारणों से 'रवीन्द्र के प्रति' शीर्षक कविता अपनी भावसंपत्ति

में समृद्ध नहीं बन पाई है। यही स्थिति अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के संबंध में भी दिखाई देती है। अंतर इतना ही है कि 'रवीन्द्र के प्रति' कविता उनके देहावसान के पश्चात् लिखी गई है और अवनीन्द्रनाथ पर उनके जीवनकाल में ही।

'मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति' कविता में 'विश्व-संचरण', 'बहिर्जगत', 'अंतर्नभ', 'मनश्चेतना', 'मनश्चूड़', 'सूर्यमनस', 'ऊर्ध्वप्रस्फुटित' आदि अरविंद दर्शन की शब्दावली का प्रयोग किया गया है। यह शब्दावली अपनी सूक्ष्मता और अर्थगांभीर्य के कारण राम के प्रति एक विभ्रम की ही सृष्टि करती है और इस दृष्टि से इसे प्रशस्ति या श्रद्धांजलि कहना भी दुष्कर हो जाता है। अरविंद दार्शनिकता का आच्छादन मर्यादा पुरुषोतम के गौरव का अनावरण करने में प्रायः अक्षम रह गया है। 'आवाहन' शीर्षक कविता में पुनः श्रीराम के पृथ्वी पर अवतरित होने की याचना की गई है, परंतु इस बार राम नवचेतना के सेतु को बांधेंगे, जिसमें से सत्य की सेना समुद्र पार हो सकेगी। मेघनाद अणुत्रास के पर्याय हैं। कुंभकरण युगनिद्रा के, रावण के दशशीश घोर घृणा के प्रतीक हैं। इस प्रकार प्रतीकों के माध्यम से राम का मानवों के हृदयासन पर राज्यारोहण करने की बात कही गई है। यह सारा रूपक काव्यात्मक रूपविधान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

'श्री अरविंद के प्रति' कविता पुनः अरविंद दर्शन की शब्दावली से अधिनियंत्रित दिखाई देती है। इसमें पुरानी नैतिकता के स्थान पर नई उदार नैतिकता की, मानव समाज के देवोपम बनने की कामना की गई है। इसी प्रकार 'अवतरण' शीर्षक कविता में प्राकृतिक सौंदर्य का उपयोग दार्शनिक साधनाओं के पक्ष में किया गया है। साकार से निराकार की ओर यह प्रवृत्ति काव्यदृष्टि से अभीप्सित प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम रह गई है।

हमें यह स्वीकार करने में कुछ भी कठिनाई नहीं है कि प्राकृतिक वस्तुओं या दृश्यों का उपयोग दार्शनिक तथ्यों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाए, परंतु इसके लिए आवश्यक यह है कि वे दार्शनिक तथ्य भी साकार या 'कांक्रीट' स्तर पर लाकर रखे जाएं। वैसा करने पर ही प्रकृति का उपयोग काव्य की दृष्टि से सार्थक बन सकता है। अपने प्रसिद्ध दार्शनिक रूपक 'ज्ञान के पंथ कृपान की धारा' में ज्ञान के पंथ से (ज्ञान से नहीं) कृपान की धारा का जो युगपत आलेखन गोस्वामी तुलसीदास ने किया है, उसमें दोनों पक्ष, प्रस्तुत और अप्रस्तुत, साकार होकर आए हैं। यही प्राकृतिक और दार्शनिक तथ्यों के विन्यास

की आदर्श शैली कही जा सकती है।

पुस्तक के अंत में 'त्रिवेणी' शीर्षक कविता तीन-चार पात्रों के कथनोपकथन के आधार पर रची गई है। गंगा, यमुना और सरस्वती—तीनों अपने-अपने स्वरूप और प्रकृति का उल्लेख करती हैं। 'तापसी' नामक पात्र के माध्यम से इस रूपकरचना का विन्यास किया गया है। गंगा, लोकजीवन में शांति और समृद्धि की प्रतिनिधि है, साथ ही वह स्वस्थ मन की प्रतीक भी है। यमुना अपनी उग्रता के कारण अवचेतन मन की प्रतिनिधि बनाई गई है। सरस्वती वह अंतर्मुख धारा है, जो जागतिक भूमि से अदृश्य रहकर, आत्मरूप बन निखिल जगत को निर्मल-निस्तल की ओर आकर्षित करती है।

इस रूपक में गंगा, यमुना और सरस्वती के बाह्य पक्ष और उनके प्रतीकात्मक पक्ष में बड़ी हद तक सामंजस्य पाया जाता है। अतएव 'युगांतर' की अन्य प्रतीकात्मक कविताओं की अपेक्षा यह अधिक काव्यात्मक, संतुलित और सुपाठ्य बन सकी है।

ग्राम्या

'युगवाणी' के पश्चात् 'ग्राम्या' में आकर हम एक संतोष की सांस लेते हैं, क्योंकि नाम को छोड़कर 'ग्राम्या' का सारा कलेवर 'युगवाणी' के कृत्रिम काव्यभार से बदला हुआ दिखाई देता है। इस पुस्तक का नाम 'ग्राम्या' इसलिए उपयुक्त नहीं है कि उक्त शब्द एक अविकसित और पिछड़े हुए समाज का परिचायक है, जबकि इन कविताओं में ग्रामसंस्कृति का एक ऐसा सांचा मिलता है जो अपने में सजीव और समृद्ध कहा जा सकता है। कुछ कविताएं अवश्य गांवों की दयनीय दशा से संबंधित हैं। परंतु कुछ अन्य कविताएं ग्रामीण नर-नारी का ऐसा चित्र उपस्थित करती हैं जो नागरिक कृत्रिमता के विरोध में अधिक सहज और सुंदर है। पंत ने पहले पक्ष को प्रधानता देकर पुस्तक का नाम 'गाम्या' रख दिया है। जबकि उनकी उन्मुखता ग्रामसंस्कृति के स्वस्थ स्वरूप की ओर रही है। इतना ही नहीं, भारतीय ग्राम्यों को घेरे हुए जो रमणीय प्राकृतिक परिवेश है और गंगा जैसी नदियों का प्रवाह जिन्हें निरंतर नव्य जीवन और आह्लादकता देता रहता है, जिसे पंत ने अनेकशः चित्रित किया है, उन्हें 'ग्राम्या' शीर्षक से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। यह बात दूसरी है कि पंत ने छायावादी प्रवृत्ति के आधार पर 'ग्राम्या' का अर्थ 'ग्राम से संबंधित' मान लिया हो। परंतु यह मान्यता संस्कृत भाषा के व्याकरण या प्रचलन को स्वीकार नहीं

है, जिसका यह शब्द है।

'ग्राम्या' के 'निवेदन' में पंत लिखते हैं : 'ये कविताएं ग्राम-जीवन में मिलकर उसके भीतर से अवश्य नहीं लिखी गई हैं। ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।'[36] इन पंक्तियों में पंत क्या कहना चाहते हैं—यह स्पष्ट नहीं होता। ग्रामजीवन में मिलकर उसके भीतर से कविता लिखना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना कैसे कहा जा सकता है? वर्तमान युग में प्रेमचन्द जैसे विशिष्ट लेखक ने ग्रामजीवन के भीतर से अपने उपन्यास और कहानियां लिखी हैं। क्या वे प्रतिक्रियात्मक हैं? किसी भी प्रकार के जीवन के बाहर या भीतर से किसी साहित्यिक वस्तु का निर्माण वास्तव में कवि की अपनी अनुभूति और प्रतिक्रिया पर अवलंबित है। यदि कवि की अनुभूति में प्रतिक्रिया है तभी उसका साहित्य भी उस प्रकार का होगा अन्यथा ग्रामजीवन का चित्रण चाहे यथातथ्य दृष्टि से किया जाए अथवा ग्रामसंस्कृति को एक स्वतंत्र इकाई मानकर किया जाए—विधि चाहे जो हो—रचना उत्कृष्ट और उदात्त हो सकती है। इस 'निवेदन' से भिन्न भूमि पर अपने 'चिदंबरा' काव्यसंग्रह के चरणचिह्न शीर्षक वक्तव्य में पंत कहते है : 'ग्राम्या' के भाव पक्ष की—जिसे मैंने कोरी भावुकता से बचा कर सहानुभूतिपूर्वक, मान्यताओं के प्रकाश में संवारा है—लोकजीवन के, कलुषपंक को धोने के लिए नए मानव की अंतर-पुकार है।'[37] इस उद्धरण में पंत यह स्वीकार करते हैं कि 'ग्राम्या' में भावुकता के बदले सहानुभूति है, लोकजीवन के कलुषपंक को धोने के लिए करुण पुकार है और उसे उन्होंने अपनी मान्यताओं के प्रकाश में संवारा है। पंत का यह वक्तव्य 'ग्राम्या' वाले 'निवेदन' से अधिक संतुलित और साहित्यिक है। मान्यताओं के प्रकाश में कुरूप से कुरूप वस्तु भी संवारी जा सकती है यह स्वीकृति यहां उपलब्ध है जो 'ग्राम्या' के वक्तव्य में नहीं है। 'ग्राम्या' में प्रतिक्रियात्मक वस्तु के निर्माण की जो बात कही गई है वह उसी स्थिति में चरितार्थ हो सकती है जब कवि की अपनी चेतना भी प्रतिक्रियात्मक हो गई हो।

पंत के इस आरंभिक विचारवैषम्य से आगे बढ़कर जब हम 'ग्राम्या' की कविताओं को देखते हैं, तो हमें इस पुस्तक में ग्रामजीवन से संबंधित एक प्रगतिशील विचारधारा और भावधारा दृष्टिगत होती है। 'ग्राम्या' में 'आंखें', 'गांव के लड़के', 'वह बुड्ढा' जैसी कुछ कविताएं ऐसी अवश्य हैं जिनमें गांवों की दयनीय और विपन्न स्थिति का परिचय मिलता है। परंतु व्यंजना के माध्यम से कवि ने

इन चित्रों को भी यथेष्ट करुणा प्रदान की है जिसके कारण ये रचनाएं भी चमक उठी हैं। ग्राम, ग्राम-कवि, ग्राम-युवती, ग्राम-चित्र, ग्राम-नारी, ग्राम-वधू, ग्राम-श्री, नहान जैसी अनेकानेक कविताओं में ग्रामजीवन की स्वस्थता और ग्रामीणों की सरल व्यावहारिक संस्कृति का बड़ा अच्छा भान कराया गया है। चमारों का नाच, कहारों का नृत्य, रुद्र-नृत्य आदि रचनाओं में लोकप्रगीतों की परंपरा का प्रदर्शन किया गया है। इनसे आगे बढ़कर 'गंगा' शीर्षक कविता में ग्रामीणों के सुख-उल्लास तथा गंगा की शोभा वर्णित है। 'ग्राम देवता' शीर्षक लंबी कविता में ग्रामीणों के अंधविश्वास तथा उनकी रूढ़िप्रियता का यथार्थ चित्रण किया गया है। गांवों में फैला यह ऐसा रोग है जिसकी चिकित्सा होनी ही चाहिए और पंत ने इस चिकित्सा की प्रस्तावना भी की है। 'संध्या के बाद' कविता में यद्यपि ग्रामीण अंधकार का अवसादपूर्ण चित्रण है, परंतु ग्रामजनों का सांध्य जीवन भी तटस्थता के साथ अंकित किया गया है और कविता के अंत में ग्रामीणों का संगठित होकर अंधकार में प्रकाश की मांग करना दिखाकर कवि ने आगामी विकास की संभावनाएं संकेतित की हैं। इस कविता में ग्रामीणों के विभिन्न सामाजिक स्तरों के प्रतिनिधियों का भी हल्का-सा चित्रण है। यद्यपि ग्रामजीवन के विविध पार्श्वों को ले लेने के कारण यह रचना, शिल्प की दृष्टि से, बिखरी हुई दिखाई देती है, पर अन्य दृष्टियों से इसमें ग्रामजीवन की यथार्थवता और उसके उन्नयन के संकेत भी मिलते हैं।

'ग्राम्या' की शेष कविताएं विशुद्ध ग्रामस्तर पर न लिखी जाकर विस्तृत राष्ट्रीय स्तर पर लिखी गई हैं। 'चरखागीत', 'महात्माजी के प्रति', 'राष्ट्र-गान' आदि ऐसी ही कविताएं हैं। परंतु उन सबके शीर्ष पर 'भारतमाता ग्रामवासिनी' शीर्षक अतिशय भावमयी रचना उपलब्ध होती है, जो कदाचित् पंत के श्रेष्ठ प्रगीतों में ऊंचे स्थान की अधिकारिणी है। इसमें ग्रामवासिनी भारतमाता के प्रति कवि की करुणा का अजस्र स्रोत फूट निकला है और वर्तमान भारत की प्रतिमा का सच्चा दिग्दर्शन करा दिया गया है। यद्यपि यह अपनी 'वास्तविकता' के कारण राष्ट्रगीत बनने में अक्षम है (राष्ट्रगीत सदैव विजय और उत्कर्षसूचक हुआ करते हैं) फिर भी हिंदी में निर्मित राष्ट्रीय गीतों में इसका एक विशिष्ट स्थान है और रहेगा।

कुछ स्फुट कविताएं 'दिवा-स्वप्न', 'सौंदर्य-कला', 'स्वीट-पी के प्रति', 'कला के प्रति', 'स्त्री' और 'आधुनिका' भी 'ग्राम्या' में पाई जाती हैं। परंतु इनका 'ग्राम्या' काव्यपुस्तक के रूपनिर्माण में केवल प्रकीर्णक स्थान है।

हम कह चुके हैं कि 'ग्राम्या' में आकर पंत अपने विचारक रूप को छोड़कर पुनः कविरूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं। यहां हम यह भी कह सकते हैं कि 'पल्लव' के पश्चात् 'ग्राम्या' ही उनकी ऐसी काव्यपुस्तक है जिसमें वे प्रकृतिस्थ दिखाई देते हैं। बीच की रचनाओं 'गुंजन', 'युगांत' और 'युगवाणी' में कवि का यह सहज रूप कठिनाई से दिखाई देता है। यद्यपि इनमें से प्रत्येक संग्रह में दो-चार ऐसी कविताएं आ गई हैं जो न केवल अतिरिक्त विचार के भार से मुक्त हैं, वरन् 'पल्लव' की श्रेष्ठ कविताओं के समकक्ष तथा कहीं-कहीं उनसे भी आगे हैं। परंतु इन संग्रहों की वे रचनाएं नियम न होकर अपवाद ही बन सकी हैं और पंत उनमें एक समाजनियामक के रूप में ही दिखाई देने लगे हैं। 'ग्राम्या' में पुनः उनका यह नियामक रूप तिरोहित हो गया है और वे एक सच्चे कवि और कलाकार के रूप में समागत हुए हैं। इस द्वितीय समागम में यह विशेषता भी है कि 'पल्लव' काल की भाषा, शैली और भावधारा सभी काव्यांग नए रूप में प्रस्तुत हुए हैं। एक संपूर्ण कायाकल्प की सृष्टि की गई है—जो सर्वथा स्वागतयोग्य है। 'पल्लव' के पश्चात् और 'ग्राम्या' के पूर्व की रचनाओं के विषय में हमने जो विचार व्यक्त किए हैं उन्हें इसी भूमिका पर देखना उचिता होगा। विषय और उसकी अभिव्यक्ति में सामंजस्य की कमी, काव्येतर तत्त्वों का प्रमुखता से ग्रहण तथा तरल भावों को भी बोझिल बनाकर क्रमागत गंभीर शैली में उपस्थापन और इन सबसे ऊपर काव्य पर नीरस विचारों का आच्छादन ऐसे स्खलन हैं जिन पर हमें अपनी विपरीत सम्मति देनी ही पड़ी है। कोई भी साहित्य-समीक्षक ऐसा ही करने को बाध्य होता और मेरे सामने भी यही बाध्यता थी। परंतु इसके कारण कवि के प्रति हमारी सम्मानभावना में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया है और न उसके आने की संभावना ही रही है। 'ग्राम्या' पर पहुंचकर हम पंत को पुनः कविरूप में पा गए हैं—यह हमारे लिए हर्ष ही बात है।

जहां तक 'ग्राम्या' के विचारपक्ष की बात है, विचारों की अंतःसलिला काव्य में व्याप्त दिखाई देती है। लेकिन वे विचार अपने स्थान पर हैं। कांटे की भांति सतह पर नहीं हैं। संक्षेप में 'ग्राम्य' का विचारपक्ष द्विधात्मक है। एक ओर ग्राम की रूढ़ियां हैं, विवशताएं हैं, विपन्नता है, अंधकार है, पुरुष और नारी का अवसाद है, तो दूसरी ओर लोकजीवन की स्वाभाविकता है, पुरुष और नारी के सीधे संबंध हैं, वधू की लज्जा, मां के प्रति ममता, धोबियों और कहारों के उल्लासपूर्ण नृत्य, प्रकृति का रमणीय प्रसार—ये और ऐसे अनेक सशक्त पक्ष भी हैं। इस द्विधात्मक काव्यनिर्माण में अंतर्व्याप्त धारा यद्यपि वैचारिक है, तो

भी अदृश्य है और यही काव्य के लिए अभीष्ट भी है। कुछ कविताओं में नागरिक कृत्रिमता के प्रति व्यंग्यात्मक उल्लेख भी हैं। कुल मिलाकर 'ग्राम्या' का विचारपक्ष संतुलित, काव्योपयुक्त और नई विकासशील चेतना के अनुरूप है।

कला पक्ष

'ग्राम्या' में प्रगीतों के आकार प्रायः छोटे और चुस्त हैं। एक-एक दृश्य एक-एक कविता के लिए अलम माना गया है। इससे प्रगीत की एकाग्रता में अभिवृद्धि हुई है। केवल एक कविता 'ग्राम-देवता' और दूसरी 'संध्या के बाद' अधिक लंबी हैं। परंतु 'ग्राम-देवता' को कवि ने स्वतः ही कई टुकड़ों में बांटकर लिखा है और 'संध्या के बाद' कविता में ग्राम के समस्त सांध्यजीवन को समेटने के लिए विस्तार कर दिया है। इन्हें छोड़ देने पर 'ग्राम्या' का प्रगीतशिल्प खूब सधा हुआ और सुकेंद्रित ज्ञात होगा।

भाषा

जहां तक अभिव्यंजना पक्ष या भाषा का संबंध है हमने इसकी पर्याप्त चर्चा पुस्तक के विवेचनक्रम में की है। पंत भाषासंभार से हटकर सरलता की ओर कई कदम आगे बढ़े हैं और अधिकतर विषयानुरूप या भावानुरूप हो गए हैं। ऐसा होते हुए भी पंत के छायावादी संस्कार बीच-बीच में सिर उठाते रहे हैं और सम्मापन, क्रंदन, संघर्षण, शतदल, कुत्सित, गर्हित, जघन्य, रेखांकित, आवेश-विवश, जीवनोल्लास जैसे भारी-भरकम शब्दों से नाता तोड़ नहीं सके हैं। हम यह भी देखते हैं कि व्यंग्य-विनोद की भूमिका भी पंत ने 'ग्राम्या' में बड़ी विरलता से अपनाई है। ये अपवाद और ये सीमाएं यद्यपि 'ग्राम्या' में विद्यमान हैं, परंतु उसका भाषाकलेवर लोकजीवन से गृहीत शब्दावली और मुहावरों का उपयोग कर सका है। पुस्तक का संपूर्ण प्रभाव बदलती हुई भाषा के नए प्रतिमान का प्रत्यय और प्रमाण देता है।

अध्याय पांच

परवर्ती काव्य और अरविंद दर्शन

गांधीवादी और मार्क्सवादी विचारों के ऊहापोह के पश्चात् पंत कदाचित् इन दोनों को छोड़ बैठे और एक अन्य भावनात्मक दर्शन में प्रविष्ट हुए जिसे अरविंद दर्शन कहा जाता है। गांधीजी के साथ जिस महान् सक्रियता का योग है, उस पक्ष को छोड़कर पंत केवल उनकी अहिंसा को अपना सके थे। मार्क्सवाद में जिस निस्संग भौतिक विकास का निर्देश है, उसके केवल एक संवेदनात्मक पक्ष तक ही पंत की पहुंच थी। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि पंत ने गांधीवाद या मार्क्सवाद के तत्त्वदर्शन को किसी गंभीर रूप में अपनाया था। अतएव जब वे इस अंतवर्ती समय को पार कर सन् 42 के आसपास स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरण की अरविंदवादी काव्यरचनाओं में प्रवृत्त हुए तो हमें आश्चर्य करने का कोई कारण न था। ठोस पृथ्वी की प्रखरता और प्रचंडता या मानववैषम्य की कुरूपता पंत के काव्य को प्रगाढ़ उत्तेजना नहीं दे सकीं। इसके बदले उनके कल्पनाशील व्यक्तित्व को अरविंद दर्शन के स्वर्णिम भविष्य के स्वप्नों ने आकृष्ट कर लिया पंत की प्रकृति के यही अनुकूल था। परंतु किसी दर्शन को स्वीकार करना एक बात होती है और उसको काव्यरूप में निर्मित कर देना दूसरी बात होती है। पंत अरविंद दर्शन को काव्य का स्वरूप देने में निरंतर प्रयत्नशील रहे हैं। आरंभ में उन्हें आंशिक सफलता ही मिली। इसीलिए स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरण में वैचारिक और सैद्धांतिक शब्दावली ज्यों की त्यों रखी मिलती है। इन कृतियों में प्रगीतकाव्य की सहजता और सौष्ठव नहीं है। इन्हीं रचनाओं में आधुनिक विज्ञान संबंधी कुछ शाखाओं के अध्ययन का आंशिक परिणाम भी कतिपय रचनाओं में दिखाई पड़ता है। मानवविकासविज्ञान और नृतत्वशास्त्र के आंशिक उपकरण भी मिलते हैं, परंतु सर्वत्र इतिवृत्तात्मक तथ्यों का ही निर्देश हो पाया है। भावोच्छ्वास के लिए अवकाश नहीं मिला है।

'उत्तरा', 'रजत-शिखर' और 'वाणी' संग्रहों में पंत क्रमशः काव्य के अधिक समीप पहुंचने लगे हैं जिसका आशय यह है कि वे कोरे दार्शनिक चिंतन से प्रेरित न होकर मानव-अनुभूतियों के संपर्क में आने लगे हैं। स्वर्णकिरण और स्वर्णधूलि के लंबे दंडक छंद इन रचनाओं में आकर अधिक छोटे और भावाकलन के योग्य बन गए हैं। परंतु अकाव्योचित पदावली का प्रभाव यहां भी बना हुआ है। एक स्वच्छंद कवि के लिए, विशेषकर पंत जैसे भावुक और कल्पनाजीवी कवि के लिए, विचारमंथन की भूमिकाएं उपादेय नहीं होतीं, इसका प्रमाण इन कृतियों में भी मिलता है।

'कला और बूढ़ा चांद' में पंत ने फिर से वास्तविक काव्यदिशा का प्रत्यय पाया है। इस काव्यसंग्रह में उनकी रचनाएं अधिक स्वच्छंद हैं। इन रचनाओं पर दर्शन का अतिरिक्त बोझ नहीं रह गया है। यद्यपि उनमें दार्शनिकता है पर ये अधिक काव्यात्मक हैं। इस रचना में मुक्त छंदों का प्रयोग काव्य सहजता का परिचायक है। पूर्ववर्ती कृतियों में छंदों के शिकंजे में बंधकर पंत की दर्शनप्रमुख सृष्टियां कृत्रिम और काव्यहीन बनती जा रही थीं। केवल अकाव्यात्मक पदविन्यास ही नहीं, अनावश्यक पदरचना भी, भार बनकर आई थी। इस अंतिम कृति में पंत उस भारवाहिता से मुक्त हो चले हैं। प्रतीकवादी कवियों की भांति पंत ने 'कला और बूढ़ा चांद' में सुंदर बिंबों का उपयोग भी किया है और ऐसा जान पड़ता है कि पंत का दर्शनाक्रांत काव्ययुग बीत गया है और अब वे नई, गंभीरतर और स्वच्छतर काव्यभूमिका के समीप पहुंच गए हैं।

संदर्भ

1. जयशंकर प्रसाद : आंसू, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद (दशम संस्करण), पृ० 46
2. सुमित्रानंदन पंत : चिदंबरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (प्रथम संस्करण,1959), चरणचिह्न (भूमिका) पृ० 18
3. गोस्वामी तुलसीदासः रामचरितमानस (मूल-गुटका) गीताप्रेस, गोरखपर (अड़तीसवां संस्करण, 2000 वि०) बालकांड, 1-2/11, पृ० 42
4. पी० बी० शैली : सलेक्टेड पोइम्स (सं० एडमंडेन ब्लंडेन) कार्लिस, लंदन एंड ग्लासगी (1970) 'ऐलेटर और दि स्पिरिट आफ सालिट्सूड' , पृ०125, पं० 30-36
5. रवींद्रनाथ ठाकुर : लवर्स गिफ्ट ऐंड क्रासिंग, मैकमिलन ऐंड कं० लि०, लंदन, 1942 लवर्स गिफ्ट सं० 56, पृ० 53-54
6. पी० बी० शैली : सलेक्टेड पोइम्स (सं० एडमंड ब्लंडेन) कार्लिस, लंदन ऐंड ग्लासगो (1970) 'हिम टु इंटलेक्चुअल ब्यूटी' , पृ० 505, द्वितीय छंद, प्रथम तीन पंक्तियां।
7. रवींद्रनाथ ठाकुर : लवर्स गिफ्ट ऐंड क्रासिंग, मैकमिलन ऐंड कं०, लंदन (1942) क्रासिंग सं० 55, पृ० 99
8. सुमित्रानंदन पंत : पल्लव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (छठा संस्करण,1958) 'याचना' , पृ० 145
9. वही, 'बालपन', पृ० 140
10. वही, 'आंसू', पृ० 67
11. वही, 'उच्छ्वास (भादों) ', पृ० 63
12. वही, गुंजन, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद(नवम संस्करण, सं०2015) 'मधुबन', पृ० 54
13. वही, पृ० 60
14. वही, 'भावी पत्नी के प्रति', पृ० 41
15. वही, कविता सं० 4, पृ० 15
16. वही, पृ० 16
17. वही, कविता सं०23, पृ० 49
18. वही, कविता सं० 45, पृ० 108
19. वही
20. वही, 'नौका विहार', पृ० 101
21. वही, 'एक तारा', पृ० 84
22. वही, 'अप्सरा', पृ० 99-100
23. वही, कविता सं० 9, पृ० 24, अंतिम छंद की प्रथम दो पंक्तियां
24. वही, 'झर गई कली', पृ० 38, अंतिम छंद

25. युगांत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रथम संस्करण,1968) कविता सं०: 14, पृ० 33, अंतिम छंद
26. युगवाणी, भारती भण्डार, (प्रथम संस्करण, सं० 96) 'विज्ञापन'
27. वही, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली(छठा संस्करण, 1966) 'दृष्टिपात', पृ० 10
28. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी(1974) 'चिंता', पृ० 15, छंद 2
29. सुमित्रानंदन पंत : युगवाणी, भारती भण्डार, (प्रथम संस्करण, सं० 96) 'घनपति', पृ० 43
30. वही, 'समाजवाद-गांधीवाद', पृ० 41
31. वही, 'दृष्टिपात' पृ०10
32. वही, पृ० 18
33. वही, पृ० 76
34. वही, पृ 104
35. वही, 'चींटी', पृ० 21
36. ग्राम्या, भारती भंडार, प्रयाग(चतुर्थ संस्करण, सं० 2008 वि०) 'निवेदन'
37. चिदंबरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (प्रथम संस्करण, 1959) 'चरणचिह्न', पृ० 14

अनुक्रमणी

अनुत्रास, 79
अद्वैत तत्व, 14
अध्यात्म तत्व, 13
अध्यात्मवाद, 76
अध्यात्म सत्ता, 15
'अनंग', 53
'अनंग उपासक', 27
'अनवाल्ड', 19
'अनामिका के कवि', 75
'अप्सरा', 57, 58, 61
'अप्सरी', 53
अमरनाथ झा, 37
अरविंद आश्रम, 41
'अरविंद के प्रति', 78, 79
अरविंद दर्शन, 15, 32, 37
अरविंदवाद, 15
अलंकृत शैली, 19
'अवतरण', 79
अवनीन्द्र ठाकुर, 79
असहयोग आंदोलन, 27
'आंखें', 81
'आंसू', 16, 18, 30, 37, 48, 50,
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, 75
आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 12, 18, 32
'आज नव मधु की प्रात', 54
'आज रहने दो गृहकाज', 54
आदर्शमूलक समाजवादी क्रांति, 19
'आदेश', 72
'आधुनिका', 82
आध्यात्मिक दर्शन, 15
आध्यात्मिकता, 10
आध्यात्मिकवाद, 49
आनंदवाद, 18
'आवाहन', 79
इंग्लैंड, 17
'उच्छावास', 31, 48, 49, 50, 62
'उच्छावास की बालिका के प्रति', 49
'उत्तरा', 32, 88
'उद्बोधन', 72
'एक तारा', 57, 61, 65
ऐकांतिक तत्व दर्शन, 41
औलंपिक प्रतियोगिता, 46

'कब से विलोकती', 54
कबीर, 10, 74
'कर्म का मन', 72
'कला के प्रति', 82
'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति', 78
'कहारों का नृत्य', 82
'कानन कुसुम', 18
'कामायनी', 16, 18, 30
काशी, 36
काव्य आंदोलन, 14
कीट्स, 17, 20, 38, 55
कुंभकरण, 79
'कुकुरमुत्ता', 69
'कुरुक्षेत्र', 30
'कैकेयी' 30
'कृषक', 75
'कृष्ण धन', 76
क्लासिकल कविता, 12
क्लासिकल काव्यधारा, 10
क्लासिकल प्रवृत्ति, 20
क्लासिसिज्म, 11
'खोज', 72
'गंगा', 80, 82
'गंगा का प्रभात', 75
'गंगा की सांझ', 75
गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही', 27
गांधी जी, 25-27, 31, 61, 64, 76-78, 87
गांधीतत्व ज्ञान, 76
गांधीदर्शन, 76
गांधीयुग, 78
गांधीवाद, 31, 70, 76, 87
'गांव के लड़के', 81
'गुंजन', 15, 32, 38, 51, 53-58, 60, 64, 66, 72, 74, 75, 83
गोस्वामी तुलसीदास, 47, 79
'ग्रंथि', 31, 62
'ग्राम', 82
'ग्राम-कवि', 82
'ग्रामचित्र', 82, 83
'ग्राम-नारी', 82
'ग्राम-युवती', 82
'ग्राम-वधू', 82
'ग्राम-श्री', 82
'ग्राम संस्कृति', 80, 81
ग्राम्या, 32, 61, 77, 80, 81, 82-84
'चमारों का नाच', 82
'चरखा गीत', 82
'चाँदनी', 57, 58
'चिदंबरा', 41, 81
'चींटी', 72, 74, 75
'छाया', 51
छायावाद, 9, 10
छायावाद युग, 62
छायावादी काव्य, 9, 10, 12
छायावादी काव्य युग की सांध्यतारा, 21
छायावादी काव्यशैली, 12
छायावादी दर्शन, 15
छायावादी प्रवृत्ति, 80
जनतंत्रात्मक कविता, 10

जलियावालां बाग की दुर्घटना, 26
जायसी, 10
'ज्योत्स्ना', 15, 32, 38
'झर गई कली', 60
'झरना', 18, 28
टी० एस० इलियट, 26
ट्रेजेडी, 67, 70
ठाकुर गोपालशरण सिंह, 27
'तुम और मैं', 15
'तेरा कैसा गान', 56
'त्रिवेणी', 80
'दिवा स्वप्न', 82
दिव्य प्रेम, 14
द्विवेदी युग, 62
'दो लड़के', 75
'द्वंद्व', 71
नवजागृत राष्ट्रीयता, 27
'नव-संस्कृति', 72, 73
नवीन, बालकृष्ण शर्मा, 28
'नहान', 82
'नारी', 72
नियतिवाद, 15
'निराला', सूर्यकांत त्रिपाठी, 14-19, 29, 30, 35, 69, 75
'नीरव-तार हृदय में', 56
'नूरजहाँ', 30
नैसर्गिक काव्य, 9
नृतत्वशास्त्र, 87
'नौका विहार', 57, 61, 65
पंत, सुमित्रानंदन, 14-20, 29, 31, 32, 35-41, 45, 46, 48, 49, 51-59, 63-70, 80-84, 87, 88
पंत का दर्शनाक्रांत काव्ययुग, 88
पंत की एकषष्ठी, 41
'पतझर', 72
'पथिक', 27
'परिमल गोष्ठी', 39
'परिवर्तन', 31, 37, 48, 51, 53, 61
पलायनवादी कवि, 20
'पल्लव', 15, 20, 32, 37, 51, 53, 54-57, 59-61, 83
'पुण्य-प्रसू, 72
पुष्पोपहार, 41
पूंजीवाद, 10
प्रकाशचन्द्र गुप्त, 32
'प्रकृति का उच्च पुरोहित', 17
प्रगीत काव्य, 28, 29, 32, 60
प्रतिक्रियात्मक साहित्य, 81
प्रतीक पद्धति, 11, 14
प्रतीकवादी, 88
'प्रथम रश्मि', 53
प्रथम रोमांटिक समीक्षक, 10
प्रथम विश्वयुद्ध, 25
'प्रभा' (पत्रिका), 28
प्रयाग, 35, 36
प्रसाद, जयशंकर, 13, 15 17, 18, 28, 30, 35, 67
प्राकृतिक रहस्यवाद, 17
प्राचीन काव्य, 11
'प्रामेथियस अनबाउंड', 38

प्रेमचन्द, 81
'प्रामेथ्यूज', 19
'फैंटेसमाटा', 9
फ्रांस की प्रथम राज्यक्रांति, 10
'बांसों का झुरमझुट' 65
'बादल राग', 19
'बापू', 75
'बापू के प्रति', 64
'बालापन', 50, 51
बुद्धिवाद, 18
भक्तजी (गुरुभक्त शरण सिंह), 30
भरत, 11
'भव-मानव', 72
'भारत' (पत्र), 35
'भारत-भारती', 62, 63
'भारतमाता ग्रामवासिनी', 39, 82
भाववादी विचारणा, 64
'भावी पत्नी के प्रति', 51, 53, 54
भौतिकवाद, 76
मतवादी दृष्टि, 39
'मधुचर्या का प्रेमी', 26
'मन के स्वप्न', 72
मम्मट, 68
'मर्यादा पुरुषोतम (राम) के प्रति, 78, 79
'महात्माजी के प्रति', 82
महादेवी वर्मा, 9, 14, 17, 20
माखनलाल चतुर्वेदी, 28, 30
मधु-संचय, 59
'मानव-पशु', 72,
मानवतावादी काव्य, 17
मानवतावादी दर्शन, 76
मानवविकास विज्ञापन, 87
मार्क्स, 76
'मार्क्स के प्रति', 75
मार्क्सवाद, 15, 37, 76, 87
मार्क्सवादी दर्शन, 32, 76
मार्क्सवादी समीक्षक, 10
'मिलन', 27
'मिस्टिसिज्म', 16
मुकुटधर पांडेय, 28
मुक्त छंद, 29
मुक्तक गीत, 30
'मुझे स्वप्न दो', 77
'मुस्करा दी थीं, क्या तुम प्राण', 54
'मूल्यांकन', 72
मेघनाद, 79
मैथिलीशरण गुप्त, 27, 30, 62
यमुना, 80
'यमुना के प्रति', 14
'युग उपकरण', 82
युगनिद्रा, 72
'युग पथ', 61
'युगवाणी', 32, 53, 61, 62, 66, 69, 70, 72, 74, 75, 76, 77, 78, 80
'युगांत', 38, 61-65, 72, 77, 83
'युगांतर', 61, 62, 77, 78, 80
यूरोप, 10
यूरोपीय धार्मिक काव्य, 9
'रजत शिखर', 88
'रत्नाकर', जगन्नाथ दास, 36

रवींद्रनाथ ठाकुर, 47
रहस्यवाद, 9, 10, 13-16, 48
रहस्यवादी काव्य, 9, 10, 13
रहस्यवादी दर्शन, 16
रहस्योन्मुखी कविता, 9
रहस्योन्मुखी दर्शन, 18
रामचन्द्र टंडन, 35
'रामचरितमानस', 10
रामनरेश त्रिपाठी, 27
रामराज्य, 64
रामविलास शर्मा, 32
रावण, 79
'राष्ट्रगान', 82
राष्ट्रगीत, 82
राष्ट्रीय आन्दोलन, 27
'रुद्र-नृत्य', 82
'रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम', 54
'रूप-पूजन', 72
'रूप सत्य', 73
रोमांतिसिज्म, 9, 10, 16
'लहर', 18
लाक्षणिक शैली, 12
'ला बेली डेम सैंस मरसी', 55
'लेन-देन', 73
लौंजाइनस, 10
वक्रोक्तिकार, 68
वक्रोक्ति काव्य, 12
'वन-वैभव', 28
वर्ड्सवर्थ, 17, 18, 19, 39
'वस्तु-सत्य', 72
वस्तून्मुखी दृष्टि, 39
'वह बुड्ढ़ा', 81
वाई० बी० ईटस, 26
'वाणी', 71
वियोग काव्य, 16
विराट जन आंदोलन, 26
विलियम ब्लेक, 17, 20
विशिष्ट काव्य आंदोलन, 6
विश्व ज्योति, 14
'वीणा', 31
व्यष्टि सौंदर्यबोध, 13
'शरीर का रीढ़दर्शन', 51
शांतिप्रिय द्विवेदी, 37
शिवदान सिंह चौहान, 32
शेक्सपियर, 10
'शेरसिंह का आत्मसमर्पण', 18
शेली, 17, 19, 31, 32
श्यामसुंदर दास, 36
'श्री अवनीन्द्र ठाकुर की पचहत्तरवीं वर्ष गांठ पर', 78
श्रीराम, 79
संकलन तत्व, 11
'संध्या', 64
'संध्या के बाद', 82, 84
'संध्या वर्णन, 14
सबजेक्टिव आर्ट, 29
समष्टि सौंदर्यबोध, 13
'समाजवाद-गांधीवाद', 70
सरल शैली, 19
सरस्वती, 80
सामंत युगीन व्यवस्था, 10
सामूहिक जनतंत्र, 70